"होरा शतक"

(फलित ज्योतिष में अनूठी पुस्तक)

लेखक :-

ज्योतिर्विद जगन्नाथ भसीन

(Retired A. O)

(१. व्यवसाय का चुनाव और आपकी आर्थिक स्थिति,
२. ज्योतिष और रोग, ३, फलित सूत्र आदि के प्रणेता)

मूल्य २-५०

विषय सूची

विषय		पृष्ठ

प्रस्तावना

ज्योतिष विषय पर अनेक ग्रन्थों के होते हुए भी हमने जो इस लघु ग्रन्थ की रचना करने की धृष्टता की है उसका कारण पाठकों के सम्मुख रखना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। जैसा कि इस पुस्तक के अध्ययन से आप को विदित होगा इसकी कुछ एक विशेषतायें हैं जिनके कारण इसका प्रयोग ज्योतिष शास्त्र के विद्यार्थी के लिये विशेषतया उनके लिये जिनको ज्योतिष का प्राथमिक (primary) ज्ञान प्राप्त है और जो कि "फलित" के क्षेत्र में अनुसन्धानात्मक दृष्टि से आगे बढ़ना चाहते हैं, क्रियात्मक रूप से लाभ प्रद हो सकता है। पुस्तक में ज्योतिष के जिस मूल-भूत सिद्धान्त का दिग्दर्शन करवाया गया है वह भाव, भावाधिपति तथा भाव कारक के सम्यक् विचार में निहित है। यथाशक्ति हमने इस दिग्दर्शन को हेतु पूर्वक उपस्थित करने की चेष्टा की है क्योंकि "हेतु" ज्योतिष शास्त्र का प्राण है तथा इसी कारणवश ज्योतिष शास्त्र को "हेतु शास्त्र" भी कहते हैं। ज्योतिष के विविध योगों के मूलभूत सिद्धान्तो का विवेचन प्रायः ज्योतिष के प्रचलित ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। इसी कमी को यथा संभव हमने पूरा करने का प्रयास किया है। हमने प्रायः अनुभव किया है कि छात्रों की दृष्टि किसी एक विषय पर विचार करते समय सीमित एवम् आंशिक (Partial) रहती है। अतः हमने एक ही विषय को बहुत भावों द्वारा निश्चित करने के नियम को

दर्शाने का कुछ प्रयत्न किया है जिससे आशा है कि इस दृष्टि को व्यापकता प्राप्त हो सकेगी।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो ज्योतिष में लक्षण अथवा (symbology) अपनी मौलिक विशेषता रखता है। ज्योतिष का सफल अध्ययन, लक्षण शास्त्र (Science of Symbology) से अनभिज्ञ व्यक्तियों द्वारा होना, बहुत कठिन है। लक्षण (symbology) के प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव पाठकों को श्लोक संख्या ४७ पर मनन द्वारा ज्ञात हो सकेगा जिसमें लक्षण शास्त्र की सहायता से उन सब बातों का निश्चय किया जा सकता है जो कि मुख्यतया "लग्न" पर से विचारणीय हैं। इसी लक्षण शास्त्र का प्रयोग करते हुए ही हमने वक्री ग्रहों में फल का तारतम्य लिखा है। इस विषय में हम अपने अनुभव के आधार पर विद्वानों की सेवा में नम्र निवेदन करेंगे कि यह सिद्धान्त कि "ग्रह वक्री होने पर बलवान हो जाता है हमें सम्पूर्ण रूपेण मान्य नहीं है। हाँ आंशिक सत्य इस में अवश्य पाया जाता है। इस सम्बन्ध में हमने "उत्तर कालामृत" के वक्री ग्रहों के सम्बन्ध में बताये हुये नियम को वक्री ग्रह की उच्च तथा नीच स्थिति के अतिरिक्त अन्य स्थितियों पर भी विनियुक्त करने का प्रयास किया है। आशा है कि मननशील सज्जन अपने अनुभव से हमारा अनुमोदन करेंगे। इसी प्रकार लक्षण शास्त्र के उपयोग का एक और उदाहरण आप को कुमार के कुमारत्व अर्थात "बुद्ध के शीघ्र फल देने में" मिलेगा (देखिये श्लोक संख्या ३६) "पार्श्वगामिनी" नाम की एक विशेष दृष्टि का उल्लेख हमने ज्योतिष शास्त्र में सम्भवतयः पहली बार किया है। इस दृष्टि के प्रयोग द्वारा हमारा विचार है कि न केवल कई एक योगों (उदाहरणार्थ देखिये "अधियोग" एवं श्लोक संख्या २८) का योगत्व ही सिद्ध हो जाता है अपितु ग्रहों के सत्य फल कहने में इससे पर्याप्त सहायता भी मिलती है। फल कहने में "दृष्टि" का महत्वपूर्ण स्थान पाठकों से छिपा नहीं है।

"विवाह" एवं "भाग्योदय" काल के निर्णयार्थ बुद्ध आदि ग्रहों की समीकृत (average) वर्ष संख्या का जो उल्लेख हमने किया है वह भी संभवतया इस रूप मे आप को पहली बार देखने को मिलेगा (देखिये श्लोक संख्या ६३०)। मनीषी पाठक इस नियम का उपयोग विद्याकाल की अवधि (Duration of Academic Career) के निर्धारित करने, तथा पत्नी अथवा पति के जीवन काल आदि के निर्णयार्थ एव अन्यत्र भी कर सकते हैं, यह उनकी अनुसन्धानात्मक बुद्धि तथा अनुभव पर निर्भर है। हमने तो संकेत मात्र दिया है।

"मृत्यु का कारण" देखते समय प्राय: सब ग्रन्थकारों ने अष्टम भाव मात्र पर बल दिया है। परन्तु हमको लगता है कि अष्टम के साथ-साथ लग्न का विचार भी इस प्रकरण मे अनिवार्य है। अतः हमने सोदाहरण यह नियम सिद्ध करने की चेष्टा की है (देखिये श्लोक संख्या ६४)।

पुस्तक की उपरोक्त एव अन्य विशेषताएँ होते हुए भी हमारी यह दृढ़ भावना है कि इसमें कोई ऐसा सिद्धान्त वर्णन नहीं किया गया जो ज्योतिष शास्त्र के मूलप्रवर्तक महर्षियों के नैसर्गिक(Axiomatic) एवं मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध हो। प्रत्येक विषय पर शास्त्रीय प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं। केवल स्थानाभाव से ऐसा नहीं किया गया।

ज्योतिष सम्बन्धी सभी बातें लिखनी न तो संभव थीं न अभीष्ट। हाँ जहाँ-जहाँ हमको छात्रों के मार्ग मे आने वाले गड्ढे (Pitfalls) प्रतीत हुये उनका रूप दर्शाने की चेष्टा हमने की है ताकि पाठकगण इस मार्ग पर तीव्रतम गति से अग्रसर हो सकें।

इस पुस्तक के मनन तथा निधिध्यासन द्वारा आप चमत्कारिक फल कहने में समर्थ हो सकेंगे ऐसी हमारी आशा एवं विश्वास है। यदि कुछ अंशों में भी ऐसा हुआ तो हम अपने प्रयास को सार्थक समझेंगे।

विनीत

डा० दीवान सुरेन्द्र नाथ "कश्यप"

होरा शतक

ॐ

आकाश पटले वितते ह्यद्भुते
ग्रहादिभिर्येन कृतं प्रयोगं।
लेखन कलायाः खलु कर्म विषये
काव्यात्मको ब्रह्म सदा हि पातुनः ॥१॥

शिष्टाचार का अनुसरण करते हुए मङ्गलाचरण श्लोक कहते हैं।

महान विस्तृत आकाश रूपी पटल (Board) पर, ग्रह नक्षत्र आदि को लेखिनी रूप में प्रयोग करते हुए, और उस लेखन कला द्वारा अद्भुत आकाश में प्राणिमात्र के शुभाशुभ कर्मों के फलों को व्यक्त करते हुए, जिस पारब्रह्म परमेश्वर ने अपने अनुपम काव्य का परिचय दिया है, वह सृष्टि कर्ता प्रभु हम सब की रक्षा करें। भगवति श्रुति यहाँ प्रमाण हैं।

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति

अर्थात, हे मनुष्यो! उस देवाधिदेव परम दिव्य गुण युक्त कवि के नक्षत्र आदि समूहों को बुद्धि पूर्वक देखो जो काव्य समूह न कभी मरता

है न जीर्ण ही होता है एव जिसमें मनुष्यों के लिये नित्य नई प्रेरणा विद्यमान रहती है। प्रभु के कवि होने में भगवान वेद भी प्रमाण हैं।

"सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं
शुद्धमपापविद्धं कवि ····मनीषी परिभू
स्वयभु याथातथ्येन व्यदधाच्छा श्वतीभ्यः समाभ्यः"

विशेष-नियम अध्याय

भावाद्भावपतेश्च कारक वशात्सर्वार्थ चिन्तामणौ
उक्तो यो मुनिना वरार्थ नियमो ह्याधार भूतो भुवि।
तस्यैवात्र प्रयोग सर्व विषये नून विशेषोहियत्
नैक भाव विवेचनमनुमत विषयस्त्वेकोऽपिचेत् ॥२॥

"सर्वार्थ चिन्तामणि" में ग्रन्थ कर्ता मुनि ने एक मौलिक नियम का उल्लेख किया है। वह यह कि किसी भी ज्योतिष विषय पर विचार करते समय तीन बातों का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात् भाव, उस भाव का स्वामी तथा उसी भाव का "कारक ।

तन भाव के कारक सूर्य तथा चन्द्रमा हैं, धन का कारक वृहस्पति, लघु भ्राता का मङ्गल, माता का चन्द्र, क्षेत्र का शनि, मन का चन्द्र, विद्या का बुद्ध, पुत्र का वृहस्पति, राग का शनि, हिंसा का मङ्गल, स्त्री का शुक्र, पति का वृहस्पति, आयु का शनि, धर्म का सूर्य केतु तथा वृहस्पति, पिता का सूर्य, राज्य का सूर्य, ज्येष्ट भ्राता का वृहस्पति, भोगों का शुक्र ऐसा जानना।

इसी मौलिक नियम का उपयोग हमको भी सब जन्म। अर्थात सब ज्योतिष सम्बन्धी प्रश्नों के सिद्ध करने में मान्य है "परन्तु इतना हमको विशेष अभीष्ट है कि जब किसी एक विषय पर विचार किया जाय तो एक ही भाव से उसका विचार पर्याप्त नहीं किन्तु दूसरे उपयुक्त भाव भी साथ ही देखने चाहियें। जैसे वाणि (Speech) का विचार केवल द्वितीय भाव से न कर पंचम भाव से भी करना आवश्यक है।" इसी प्रकार "धन" का विचार द्वितीय भाव के अतिरिक्त एकादश इत्यादि भावों से भी करना चाहिये। "पुत्र" का उवचार पचम के अतिरिक्त नवम भाव मे भी करना चाहिये। उदाहरणार्थ देखिये कुंडली
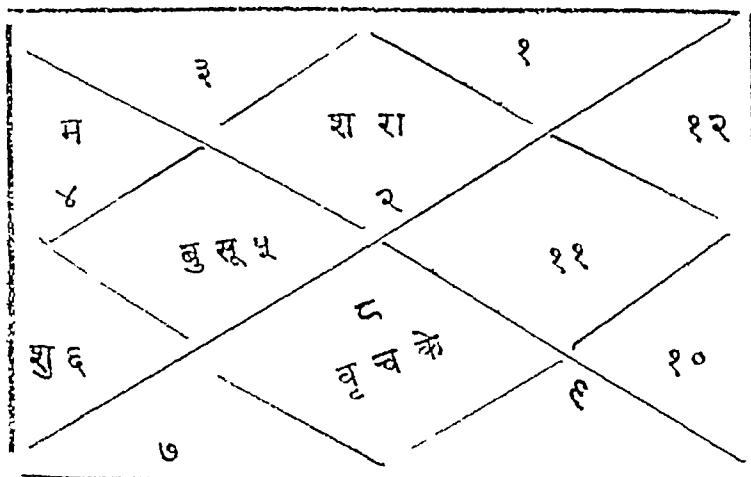
रानी साहिबा बघार। यहाँ सप्तम (पति) भाव पर शनि राहु दो अशुभ ग्रहों की दृष्टि है उसी भाव के, स्वामी पर भी शनि की दृष्टि है तथा उसी भाव के कारक गुरू पर भी शनि तथा राहु की प्रबल दृष्टि है" अतः भाव, भावाधिपति तथा कारक पाप प्रभाव में आने के कारण आप १८ वर्ष की आयु में विधवा हो गई।

"सन्यास" तथा "पृथकता" आदि योग।

छायात्मजः पगु दिवाकरेषु खेटद्वयो दिशति यत्र
निज प्रभावं।
नून पृथकता विषयाद्धितस्माद्दशमे यथा
राज्यन्यासमाहु ॥३॥

राहु, शनि तथा सूर्य इन तीनों ग्रहों में से कोई भी दो, अथवा तीन ही ग्रह जिस किसी भाव पर दृष्टि अथवा युति द्वारा प्रभाव डाल रहे हों, तो अवश्य ही उस भाव सम्बन्धी बातों से वह मनुष्य पृथक हो जावेगा अर्थात उसको उन बातों का त्याग करना पड़ेगा। जैसे दशम भाव तथा उसके स्वामी पर सूर्य शनि, सूर्य राहु, अथवा शनि राहु अथवा सूर्य शनि राहु का युति अथवा दृष्टि द्वारा प्रभाव पडता हो तो दशम भाव दर्शित "राज्य" "पदवी" "धन्धा" "मान" इत्यादि से मनुष्य को हटना पड़ेगा। समय का निश्चय दृष्टि तथा युति के बल के तारतम्य पर से करे। अन्यत्र भी ऐसा ही समझना चाहिये। जैसे इसी प्रकार के ग्रहों का प्रभाव सप्तम भाव, सप्तमेश तथा शुक्र अथवा गुरू (सप्तम भाव कारक) पर पड़ता हो तो स्त्री अथवा पुरुष से पृथकता (Seperation) हो जावे, द्वितीय भाव पर पड़ता हो तो धन से वियोग, तृतीय भाव पर हो तो भ्राता तथा मित्रों से पृथकता, चतुर्थ भाव पर हो तो जन्म भूमि से वियोग, बार-बार घर छोड़ना (Frequent Transfers) पञ्चम भाव पर हो तो पुत्र से वियोग, षष्ट भाव पर हो तो मामा से वियोग अष्टम भाव पर हो तो पिता के बडे भाई से वियोग, नवम भाव पर हो तो कुल परमपरा आगत धर्म से वियोग, एकादश भाव पर हो तो लब्ध पदार्थ तथा कार्य धन्धे का बार-बार छोड़ना द्वादश भाव पर हो तो ससार के भोगों

का त्याग अर्थात "सन्यासी" हो जावे। शनि सूर्य तथा राहु वृद्ध ग्रह होने के कारण विलम्भ मे जीवन का अन्त करते हैं। परन्तु भ्रातृ संबन्धियों तथा गुणों से प्रथम पृथकता (Seperatoin, estrangement, giving up,) देते हैं पुनः अपने समय पर मरण। (उदाहरणार्थ देखिये कुण्डली ड्यूक आफ विंडसर)।
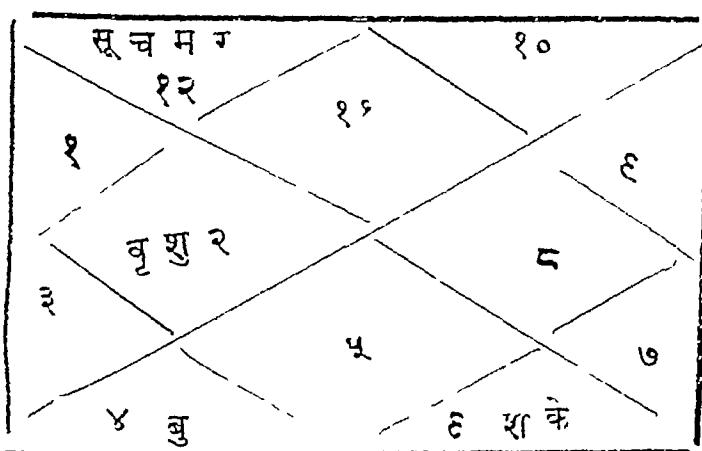
ग्रहाणां प्रतिनिधित्वमाह।

यदा तु खेटो निज ऋक्षयुक्तो।
भावस्य तस्यैवच कारकोस्ति ॥४॥
ददाति पूर्ण च फलं स्वकीय-।
मत्यन्तानिष्ठमथवान्यथापि ॥५॥

यदि कोई ग्रह किसी भाव मे स्वक्षेत्री होकर स्थित हो और उसी भाव का कारक भी हो तो ऐसी दशा में या तो नितान्त अनिष्ट फल की प्राप्ति होती है अथवा अतीव शुभ फल मिलता है। कारण इसमें यह है कि जब ऐसे किसी ग्रह पर कोई शुभ अथवा अशुभ

प्रभाव पड़ेगा तो वह प्रभाव न केवल उस भाव पर तथा उसके स्वामी पर ही अपितु उसके कारक, अर्थात तीनों मौलिक अङ्गों (factors) पर पड़ेगा। अतएव शुभता अथवा अशुभता भी पूर्ण रूप से व्यक्त होगी।

गुरुर्यथा पंचमगः स्वक्षेत्री।
कुखेट युक्तोऽथ समन्वितोवा ॥६॥
भावादि नाश प्रकटी करोति।
ततोऽभाव खल्वात्मजानाम्॥७॥

जैसे गुरु पचम भाव में अपनी राशि मेंस्थित हो, और किसी नैसर्गिक पापी ग्रह द्वारा दृष्ट अथवा युक्त हो तो उस पाप ग्रह का प्रभाव "पुत्र द्योतक तीनों अङ्गों (factors) पर अर्थात पुत्र भाव, पुत्र भावाधिपति तथा पुत्र भाव कारक "गुरु" पर पड़ेगा जिसके कारण यह योग पुत्र के अभाव का सूचक होगा।

गुरुर्यथा पचमगः स्वक्षेत्री।
शुभ खेट युक्तोऽथसमन्वितोवा ॥८॥
भावादि पुष्टि प्रकटी करोति।
ततस्तु सख्या प्रचुरात्मजानाम्॥९॥

इसी प्रकार गुरु जब पचम भाव मे निज राशि मे स्थित हो तथा शुभ ग्रह उसे देखते हों अथवा उस से युक्त हों तो उपरोक्त तीनों अगो (factors) पर शुभ प्रभाव के कारण यह योग पुत्र सख्या के अधिक होने का सूचक होगा। इस प्रकार पाठक वृन्द देखेंगे कि "कारको भाव नाशाय" की लोकोक्ति सर्वथा मान्य नहीं

हो सकती क्योंकि कारक के स्वकीय भाव में स्थित मानें, होने से अनिष्ट फल की कल्पना युक्ति युक्त नहीं क्योंकि शुभ दृष्टि से बहुत अच्छे फल की प्राप्ति अनुभव सिद्ध है। यह भी स्मर्ण रहे कि "पुत्र" के सम्बन्ध मे विचार करते समय नवम् भाव भी विचारणीय है क्योंकि नवम-भाव भी पचम भाव से पंचम होने के कारण पुत्र का द्योतक है!

निज भाव दृष्टे रनिष्ठमाह।

पाप ग्रहाणां निज भाव दृष्टिः।
करोति नाशं तद्भावजीवनम् ॥१०॥
कुम्भे रविः पंचमगो यथाहि।
करोति नाशमिहाग्रजानाम् ॥११॥

यदि कोई नैसर्गिक पाप ग्रह (मगल, राहु केतु शनि, तथा सूर्य नैसर्गिक पापी माने हैं, चन्द्र यदि पक्ष बल में हीन हो अर्थात अमावस्या के छः तिथि इस ओर अथवा छः तिथि उस ओर हो तो पापी होता है, बुद्ध शुभग्रह है परन्तु पापी ग्रहोंके साथ पापीबन जाता है, (वृहस्पति तथा शुक स्वाभाविक शुभ ग्रह हैं) अपने भाव से सप्तम भाव में स्थित होकर अपने भाव पर दृष्टि डाले तो दृष्ट भाव के जीवन का नाश करता है। जैसे पचम भाव मे कुम्भ राशि मे स्थित सूर्य बड़े भाइयो (जिनका विचार एकादश स्थान से किया जाता है) के नाश का द्योतक है। यद्यपि शास्त्रों मे प्रसिद्ध नियम है कि "यो यो भावः स्वामी युक्तो दृशोवा तस्य तस्यास्ति वृद्धि" अर्थात जो-जो भाव अपने स्वामी द्वारा युक्त अथवा दृष्ट हो उस उस भाव की वृद्धि होती है, तथापि हमारा अनुभव यह है कि यह नियम "जीवन" के विषय मे लागू नहीं होता अर्थात सूर्य के एकादश स्थान मे निज राशि को

देखने के फलस्वरूप एकादश भाव सम्बन्धी, आय (Income) वाहन (Vehicles) इत्यादि का लाभ तो होगा परन्तु एकादश भाव के जीवन के विषय में अर्थात् बड़े भाई के जीवन के सम्बन्ध में वृद्धि न होकर उलटा ह्रास होगा। अर्थात बड़े भाई का जीवित रहना अतीव कठिन होगा।

केतौ राहोरपि बलदायिनी शक्तिमाह।

शुभ ग्रहो भवेद्यत्र स्वक्षेत्रे शिखिना युतः
तस्य भावस्य प्रावल्य वक्तव्यञ्चविशेषतः ॥१२॥

यदि कोई नैसर्गिक शुभ ग्रह निज राशि मे केतु से युक्त हो तो उस भाव को विशेष बली समझना चाहिए। जैसे कन्या लग्न हो तथा स्वक्षेत्री शुक्र द्वितीय स्थान में केतु युक्त हो तो मनुष्य का द्वितीय भाव विशेष बली समझना चाहिए अर्थात वह मनुष्य विशेष धनी होता है। इसी प्रकार षष्ट स्थान में धनु राशि में केतु के साथ बैठा हुआ गुरु महान शत्रु का द्योतक है। उदाहरणार्थ देखिए कुण्डली श्री जवाहर लाल जी नेहरू की जिनको ब्रिटिश साम्राज्य जैसा शक्तिशाली एव महान शत्रु से टक्कर लेनी पड़ी थी।
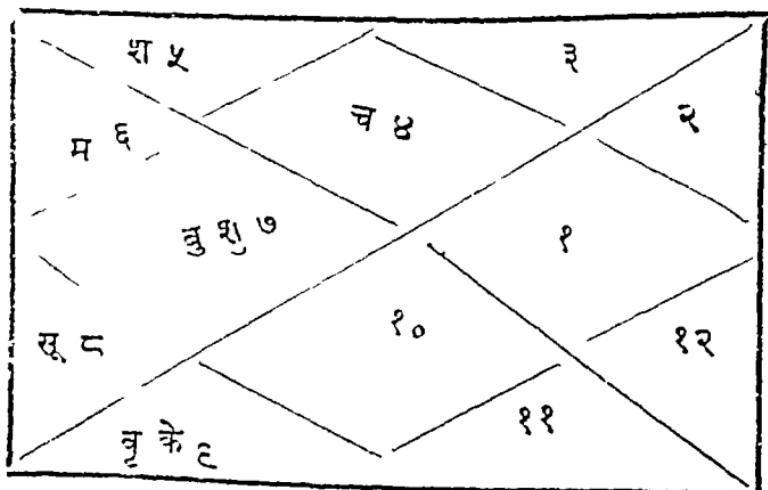
इसमे कारण यह है कि केतु एक छाया ग्रह (Shadowy planet) है और अन्य ग्रहों की भाँति, अपनी कोई भौतिक सत्ता नहीं रखता। और जिस राशि मे तथा जिस भाव में स्थित रहता है उन्हीं का फल करता है। अतः तुला मे स्वक्षेत्री शुक्र के साथ केतु होने से केतु भी स्वक्षेत्र शुक्रवत् फल देने वाला होने के कारण शुक्र से मिलकर द्वितीय भाव को अभिवर्द्धित (Boost up) करेगा। इसी नियम को राहु में भी लगा सकते हैं क्योंकि राहु भी केतुवत् छाया ग्रह ही है, इसी प्रकार राहु तथा केतु के अन्य भावों में शुभ स्वक्षेत्री ग्रहों से युक्त होकर स्थित होने का विचार भी कर लेना चाहिए।

वक्र गति विषये विशेषमाह ।

भौमादि पञ्चखेटानां भचक्रे सरला गति
भूमेस्तु गति वशात्तत्र दृश्यते वक्रगामिता ॥१३॥

शास्त्रों का मत है कि सूर्य तथा चन्द्र सदा ही ऋजु गामी हैं कभी टेढ़े नहीं चलते। राहु तथा केतु सदा वक्र गामी हैं, यह कभी सीधे नहीं चलते और मङ्गल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि इन पाँच ग्रहों की गति कभी वक्र कभी मार्गी होती है। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन यह है कि वास्तव में भौम आदि पाँच ग्रह भी सूर्य तथा चन्द्रमा की भाँति सरल चाल से ही चलते हैं परन्तु अपेक्षाकृत स्थिति (Relative Position) वश हम पृथ्वी निवासियों को उल्टे चलते प्रतीत होते हैं। जैसे दो रेल गाड़ियाँ यदि एक ही दिशा की ओर आमने-सामने दो पटरियों पर चल रही हों तो एक गाड़ी में बैठे हुये यात्रियों को दूसरी गाड़ी विपरीत दिशा में चलती हुई प्रतीत होती है, यदि पहली गाडी की अपेक्षा दूसरी गाडी की गति कम हो।

फल प्रकारस्य तु निश्चयार्थं ग्रहस्य रूपं प्रकटं हिग्राह्यं ।
निहितं तु रूपमवगण्यमत्र योज्यंफल लक्षणहेतुसहिम् ॥१४॥

परन्तु स्मरण रहे कि ज्योतिष शास्त्र में दृष्टि गोचर होने वाले "आभास" का मूल्य वास्तविकता से अधिक है।

इसीलिये फल का निश्चय ग्रह के दृष्टि गोचर होने वाले रूप द्वारा ही करना चाहिये। ग्रह का अदृश्य रूप चाहे वह वास्तविक ही क्यों न हो ग्राह्य नहीं है। दिखाई देने वाले रूप पर ही हेतु (reason) तथा लक्षण (symbology) का प्रयोग करके फल की कल्पना करनी चाहिये। उदाहरणार्थ सूर्य यद्यपि वास्तव में वैज्ञानिकों की सम्मति में एक तारा है न कि ग्रह अर्थात सूर्य अन्य नक्षत्रों की भाँति स्थित प्राय ही है और पृथिवी आदि ग्रहों की भाँति घूमने वाला नहीं है तथापि हम पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को पूर्व से उदय होता तथा पश्चिम में अस्त होना दिखाई देता है। अतः ज्योतिष शास्त्र ने सूर्य को चलता देखकर और दिखाई देने वाले उसके रूप का ग्रहण कर, सूर्य को भी नव ग्रहों में से एक ग्रह मान लिया है।

वक्र ग्रहो जन्मनि नीच राशौ,
स्थितः फलं यच्छति उच्चराशेः ॥१५॥
स्वकीय उच्चे तु स एव वक्र-
स्स्वनीच राशेर्फलमातनोति ॥१६॥

यदि कोई ग्रह जन्म कुण्डली में नीच राशि में स्थित हो तथा वक्री हो तो उसका फल ऐसा होता है कि मानो वह अपनी उच्चराशि में स्थित है। इसके विपरीत यदि कोई वक्री ग्रह उच्च राशि में स्थित हो तो वह नीच राशि मे रहने का फल देता है।

उदाहरणानि

उदाहरण देते हैं—

अलिलग्ने तु जातस्य नीचे वक्री गुरु स्थितः ।
प्रददाति बहून् पुत्रान् नात्रकार्या विचारणा ॥१७॥

वृश्चिक राशि मे जन्म हो और वृहस्पति नीच राशि का अर्थात् मकर का तृतीय भाव मे वक्री होकर स्थित हो तो उस मनुष्य को बहुत पुत्रों की प्राप्ति होती है, यह बात निस्सन्देह है। तात्पर्य यह है कि क्योंकि गुरू वृश्चिक लग्न वालो के लिये पंचम भावाधिपति तथा पुत्र कारक दोनो है अतः उनके लिये "पुत्र" का विशेष प्रतिनिधित्व करता है। ऐसा गुरू नीच परन्तु वक्री होने से नीचता के विरूद्ध फल अर्थात उच्चता का फल देने वाला होगा। इस प्रकार पुत्र संख्या का अधिक होना युक्ति सङ्गत है।

तस्मिन् लग्न हि जातस्य उच्चे वक्री गुरू स्थितः
पुत्रमेकं कदाचित्तु पाप युक्तं न चेद् हि ॥१८॥

उसी वृश्चिक लग्न में जन्म हो और गुरू नवम स्थान में उच्च-राशि का परन्तु वक्री होकर स्थित हो तो कठिनता से एक पुत्र की प्राप्ति सम्भव है ऐसी स्थिति में गुरू पर किसी पापी ग्रह की दृष्टि न हो और न ही युति इत्यादि द्वारा उस पर पाप प्रभाव हो। उपरोक्त कथन से यह अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है कि किसी ग्रह के उच्च मात्र होने से उसके फल में शुभता का आना कोई व्यापक नियम नहीं है।

अलिर्लग्ने तुजातस्य कर्मणि वक्रो वृहस्पति।
उच्च राशेस्तु सान्निध्यात् पुत्राभावं हि निर्दिशेत् ॥१६॥

वृश्चिक लग्न में जन्म हा और वक्री गुरु दशमस्थान में हो तो ऐसी स्थिति में गुरु (कर्क राशि के समीपतम होने से तथा वक्री होने के कारण) पूर्ण नीचता का फल नहीं देगा अपितु कुछ ही न्यून नीचता का फल देगा। यहाँ भी ऐसा समझा जावेगा मानो उच्चराशि मे स्थित होकर ही वक्री है। ऐसा गुरु पुत्र के भाव को दर्शावेगा।

वृश्चिके तु भवेज्जन्म नेत्रे वक्री वृहस्पति।
नीच राशेस्तु सान्निध्याद् वहु पुत्रान् ददातिहि ॥२०॥

वृश्चिक राशि में लग्न हो और धनु राशि (द्वितीय भाव) में गुरु वक्री होकर स्थित हो तो पूर्वोक्त नियमानुनार गुरू को नीच समान समझा जायेगा क्योंकि धनु राशि मकर राश के समीपतम है और वहाँ गुरु को नीचत्व प्राप्त होता है। परन्तु वक्री होने के कारण पुत्रों की प्रचुर सख्या के रूप में अच्छा फल देगा। निष्कर्ष यह कि वह राशि जिसमे वक्री वृहस्पति स्थित है, जितनी "कर्क" के समीप होगी उतना पुत्र "अभाव" को तथा जितनी मकर राशि के समीप होगी उतनी ही पुत्रों की सख्या की प्रचुरता की द्योतक होगी।

एक राशौ शुभत्वे अन्य राशौ शुभ फलमाह।

द्विराशिपा ये च कुजादि खेटा पश्येयुरेक ऋक्षं स्वकीयं
ऋक्षं तु शुभ खगौऽवंलोकितंहि फलंतु तस्यान्य
ग्रहोपिसुष्टु ॥२१॥

मङ्गल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि यह सब ग्रह दो दो राशियों के स्वामी होते हैं। जब यह ग्रह अपनी किसी एक राशि को देखते हैं और वही राशि किसी शुभ ग्रहद्वारा भी दृष्ट हो तो जिस भाव पर ग्रह की दृष्टि है उस भाव की पुष्टि तो होती ही है। किन्तु निज भाव को देखने वाले ग्रह की दूसरी राशि भी पुष्ट हो जाती है, इस प्रकार उस ग्रह की दूसरी राशि (वाले भाव) सम्बन्धी बातों की भी वृद्धि होती है—आगामी श्लोक मे उदाहरण देते हैं।

अस्योदाहरणमाह ।

कीट लग्नेतु जातस्य कुजो भ्रातृ गतो यदि।
तुर्ये च भृगुश्चान्द्री देवेज्यः षष्टगोपिवा ॥२२॥
अस्मिन् योगे तु जातस्य दशमे दृष्टि त्रिभिश्शुभैः
कुजस्य च तत्र निजा दृष्टि मंत्रबुद्धि विशेपदा ॥२३॥

कर्कट लग्न मे जन्म हो, मङ्गल तृतीय भाव मे हो चर्तुथ भाव में बुद्ध तथा शुक्र हों गुरु पटस्थान मे स्थित हो, ऐसे योग में (यह योग प० जवाहर लाल जी की कुण्डली में मिलता है) दशभ स्थान पर जहाँ कि मङ्गल की एक राशि (मेष) स्थित है उसकी अपनी दृष्टि है और उसी दशम स्थान पर गुरु शुक्र तथा बुद्ध तीनों नैसर्गिक शुभ ग्रहों की दृष्टि भी है।

सब ग्रहों की दृष्टि अपने भाव से सातवे भाव पर पूर्ण पड़ती है किन्तु गुरु की पूर्ण दृष्टि अपने से पंचम तथा नवम् भाव पर भी पूर्ण रहती है। इसी प्रकार मङ्गल की दृष्टि अपने से चतुर्थ तथा अष्टम भाव पर भी पूर्ण रहती है, एवम शनि की पूर्ण दृष्टि अपने भाव से तृतीय तथा दशम् पर भी पूर्ण रहती है इसी कारण से उनको

दशम भाव अथवा राज्य, मान, पदवी ख्याति इत्यादि की वृद्धि तो प्राप्त है ही परन्तु पंचम भाव की वृद्धि भी अन्यत्र क्रिया के नियमानुसार (By the law of reflex action) प्राप्त है अर्थात उनकी मन्त्रणाशक्ति (Advisory talent) तथा बुद्धि (intellect) भी उत्तम है, इसमे सन्देह नहीं। पाठक गण देखेंगे कि कुण्डली में ऐसी भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब कि एक राशि किसी शुभ ग्रह द्वारा युक्त अथवा दृष्ट न हो तो भी उसको अपनी दूसरी राशि की प्रबलता के कारण बल प्राप्त हो जाता है। देखिये कुण्डली श्री जवाहर लाल नेहरू जी की।
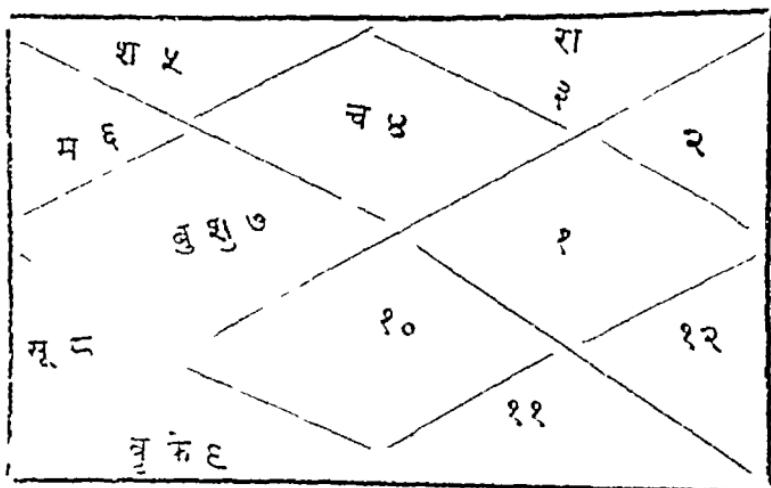
निजभावादष्टगत खेटविषये आह।

यस्य जन्मनि खेटस्तु केन्द्र भावेऽथवाशुभे
निजराशौ स्वभोच्चेवा स्वभावादष्टमो भवेत् ॥२४॥
तत्रदृष्टस्तु पापेन स्वभावेगित मानवम्
किंचिज्जीवनं दत्वा पुनस्तज्जीवन हरेत् ॥२५॥

यदि कोई ग्रह अपनी ही राशि में अथवा अपनी उच्च राशि में तथा केन्द्र अथवा शुभ स्थान (भाव) में स्थित हो परन्तु निज स्थान

से अष्टं में हो और पाप ग्रह से दृष्ट भी हो तो जिस भाव का स्वामी होकर अष्ट स्थित हो उसके जीवन को पहले तो देता है अर्थात उसको जन्म देता है परन्तु उसकी आयु अल्प ही होती है।

अत्रोदाहरणम् ।

तुला लग्नेतु जातस्य दशमस्थो यदा गुरु
सप्तमे च यदा भौमः लघु भ्रातृ विनाशकः ॥२६॥

उदाहरण देते हैं। तुला लग्न में जन्म हो और दशम भाव में वृहस्पति स्थित हों, सप्तम भाव में मङ्गल पड़े हों तो लघु, भ्राता जीवन अल्प होता है। अर्थात छोटा भाई उत्पन्न तो होता है परन्तु दीर्घायु नहीं होता। यहाँ गुरू तृतीय भावाधिपति होने से छोटे भाई का प्रतिनिधि हुआ। शुभ ग्रह होने के कारण, केन्द्र में स्थित होने के कारण, तथा उच्च राशि में स्थित होने के कारण छोटे भाइयों का जन्म लेना बहुत संभव है परन्तु तृतीय भाव से वृहस्पति अष्टम होने के कारण तथा पाप दृष्ट होने के कारण उनका अल्पायु होना भी निश्चित है।

कुंभ लग्ने तुजातस्य दशमस्थो यदा कुजः
अष्टमे च यदा शौरी लघुभ्रातुस्स्वल्प जीवनम् ॥२७॥

इसी प्रकार कुम्भ लग्न मे जन्म हो मङ्गल दशम भाव में हो अष्टम में शनि स्थित हो तो भी लघु भ्राता का जीवन अल्प होता है। यहाँ भी मङ्गल तृतीयाधिपति बल्कि लघु भ्रातृ कारक है अतः लघु भ्राता का पूर्णतया प्रतिनिधि हुआ। दशम भाव (केन्द्र) मे स्थित होने के कारण, तथा स्वक्षेत्री होने के कारण बलयुक्त हुआ अतः छोटे भाइयों की उत्पत्ति का द्योतक हुआ परन्तु शनि द्वारा दृष्ट होने

से तथा निज भाव (तृतीय) से अष्टम होने के कारण छोटे भाइयों को स्वल्प आयु देने वाला भी हुआ।

पार्श्वगामिनी दृष्टि विशेषमाह।

होराशास्त्रस्य विद्वद्भिश्शुभमध्यत्मुदाहृतं
एवञ्च पापमध्यत्वं भावानां फल निर्णये ॥२८॥

होरा शास्त्र अर्थात ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों ने भावो का फल कहने के लिये भावों तथा ग्रहों का "पाप मध्यत्व" तथ "शुभ मध्यत्व" वर्णन किया है। अर्थात जब किसी भाव अथवा ग्रह के आगे पीछे वाले भावों में नैसर्गिक पापी ग्रह स्थित हों तो "पाप मध्यत्व तथा नैसर्गिक शुभ ग्रह स्थित हों तो" शुभमध्यत्व "होता है। पहले का फल अनिष्ट और दूसरे का शुभ माना है।

चन्द्राधियोगेतु चन्द्रत्छष्टागा शुभा।
स्वपार्श्वं दृष्टयैव यच्छन्ति अधियोगस्य शभं फलम् ॥२९॥

"अधियोग" सब ज्योतिष शास्त्रों में प्रमुख धन दायक योग माना है। चन्द्राधिष्टित गृह से जब शुभ ग्रह षष्ट, अष्टम, तथा सप्तम भाव में स्थित हो तो "अधियोग" बनता है। किन्तु इस योग में चन्द्र को "शुभ मध्यत्व" उन अर्थों में प्राप्त नहीं होता जिन अर्थों में कि "शुभ मध्यत्व" शब्द का प्रयोग साधारणतया किया जाता है अर्थात चन्द्र के आगे पीछे शुभ ग्रहों की अनुपस्थिति में उस पर "शुभ मध्यत्व" नहीं तथापि एक प्रकार का शुभ मध्यत्व इस योग में चन्द्र को अवश्य प्राप्त होता है। वह ऐसे कि जब चन्द्र से षष्ट तथा अष्ट शुभ ग्रह रहेंगे तो एक शुभ ग्रह की दृष्टि चन्द्र से द्वादश स्थान पर तथा दूसरे शुभ ग्रह की दृष्टि चन्द्र से द्वितीय स्थान पर पड़ेगी— इस प्रकार चन्द्र शुभ प्रभाव के मध्य में आजायेगा। इस कारण से तथा चन्द्र (जो कि, स्मरण रहे, स्वय लग्नवत है) पर शुभ दृष्टि होने

से "अधियोग" द्वारा विपुल धन की प्राप्ति का होना युक्ति युक्त ही है।

अतएव भावादि चिन्तायां भावादि पार्श्वगामिनी।
दृष्टि नूनं च द्रष्टव्या खेटानां शुभ पापीनाम् ॥३०॥

इस हेतु से ग्रन्थकार का विशेष अनुरोध है कि भाव तथा ग्रहों के बली अथवा निर्बल होने के प्रश्न पर विचार करते समय उन भावों अथवा ग्रहो से द्वादश तथा द्वितीय स्थान पर पड़ने वाली शुभ अथवा अशुभ दृष्टि का अवश्य ध्यान रखें क्योंकि यह दृष्टि "शुभ मध्यत्व" अथवा "पाप मध्यत्व" का प्रभाव रखती है। इस विशेष प्रकार की शुभ अथवा अशुभ दृष्टि को हम "पार्श्वगामिनी" दृष्टि के नाम से उल्लेख कर रहे हैं।

अत्रोदाहरणम्।

कुम्भ लग्ने तु जातस्य लग्नस्थो च यदा गुरु
अष्टमे च यदा शौरि षष्टे भौमस्य संस्थिति।
इति योगे समुत्पन्ने लाभ भावस्य चिन्तने
पाप दृष्टिस्तु तत्रैव ज्ञातव्या पार्श्वगामिनी ॥३१॥
पाप दृष्टि प्रभावेण लाभ लाभादिपो गुरु
दुर्बलत्वादि यच्छेत्ज्येष्टे भ्रातुस्स्वल्प जीवनम् ॥३२॥

कुम्भ लग्न मे यदि जन्म हो, एकादश स्थान में बृहस्पति स्थित हो। अष्टं स्थान में शनि हो और षष्ट में मङ्गल तो ऐसी स्थिति में जब ज्येष्ठ भ्राता के सम्बन्ध मे लाभ भाव पर विचार किया जायेगा तो यद्यपि लाभ भाव पर कोई दृष्टि नहीं परन्तु लाभ भाव से द्वादश स्थान अर्थात दशम भाव पर शनि की दृष्टि है और लाभ भाव से द्वितीय स्थान पर अर्थात द्वादश भाव पर मङ्गल की दृष्टि है। इस

प्रकार देखा तो एकादश स्थान पर पार्श्वगामिनी पाप दृष्टि का प्रभाव पाया गया। अतः इस पार्श्वगामिनी पाप दृष्टि के प्रभाव से एकादश स्थान, उसका स्वामी, तथा उसका कारक तीनों निर्बलता को प्राप्त हुए जिसके फलस्वरूप बड़े भाई का अल्प आयु योग बना। इस प्रकार कोई भाव साधारणतया पाप दृष्टि प्रभाव रहित प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में पाप प्रभाव को लिये रहता है जिससे फल की अनिष्टता प्राप्त होती है। अतः पार्श्वगामिनी दृष्टि देखना हमारे अनुभव मे अत्यावश्यक है।

शत्रुद्वय युत ग्रहस्य फलमाह।

खेटस्तु हीनो रिपु राशि संयुत.
कथं बली स्याद् रिपु खेट संयुतः
पुनस्तु सश्चेद्रिपु द्वयं संयुतः
भवेत्स खेटस्त्वनपि निर्बलः ॥२२॥

शत्रु राशि में स्थित ग्रह सर्व सम्मति से निर्बल माना गया है। यदि ग्रह स्वयं शत्रु ग्रह से युक्त हो तो कैसे बली माना जा सकता है और फिर यदि वह ग्रह एक नहीं दो शत्रु ग्रहों से युक्त हो तो निश्चित रूपेण अतीव निर्बल होगा, इसमें संदेह नहीं। ज्योतिष शास्त्र में फलादेश की तारतम्यता ग्रहों के बल पर निर्भर रहती है अतः किसी ग्रह का अपने शत्रुओं द्वारा युक्त अथवा दृष्ट होकर निर्बल होना उसके अनिष्ट फल के निर्णय में सहायक होता है यह भावार्थ है।

उदाहरणमाह।

सूर्यो यथा मिथुनजातानां भ्रातृ भावगतो यदि
भृगुणा च युतस्तत्र मार्ग्ये चैव शनैश्चरः ॥२३॥

अस्मिन् योगेतु जातस्य रवौस्वक्षेत्रे सत्यपि
शत्रुद्वय प्रभावेण पितुरर्थे निर्बल एव ही ॥३४॥

जैसे मिथुन लग्न हो, सूर्य तृतीय भाव में तथा शनि नवम भाव में हो तो ऐसी दशा में सूर्य यद्यपि तृतीय भाव में स्थित है जहाँ कि एक पापी ग्रह होने के नाते इसे बल मिलता है और जहाँ पर कि वह अपने ही क्षेत्र अर्थात सिंह राशि में होने से और भी बली समझा जाना चाहिये था, तथापि वह सूर्य निर्बल ही समझा जावेगा क्योंकि उस पर शुक्र की युति तथा शनि की दृष्टि का प्रभाव पड़ रहा है और यह दोनों ग्रह सूर्य के शत्रु हैं। अतः ऐसे व्यक्ति को पिता का सुख (जहाँ तक कि पितृ कारक ग्रह सूर्य द्वारा पिता की आयु के निर्णय करने का सम्बन्ध है) स्वल्प रहेगा ऐसा समझना चाहिये। इस योग में तीसरे भाव की हानि तो स्पष्ट ही है।

खट विशेष अध्याय

चन्द्र बल ज्ञान विधिमाह ।

चन्द्रो यदा पक्षबलेन हीन-
स्तुंगस्थितोकेन्द्रगतोऽथवापि ।
बलेनहीनः कथितो मुनीन्द्रै
इन्दोस्तु पक्षाख्यबलैवमुख्यम् ॥३५॥

चन्द्र यदि केन्द्र स्थान में स्थित हो तथा उच्चराशि (वृषभ) में भी स्थित हो परन्तु यदि पक्ष बल में निर्बल हो, अर्थात् सूर्य के समीप हो (जैसा कि अमावस्या से ६ तिथि इधर, कृष्ण पक्ष में तथा ६ तिथि उधर शुक्ल पक्ष में), तो उसे निर्बल ही समझना चाहिये क्योंकि चन्द्र का मुख्य बल "पक्ष बल" ही है जो कि उसकी सूर्य से दूरी पर निर्भर है। चन्द्रमा का भाव बल (शुभ घरों में स्थित होने से) तथा उसका राशि बल (उच्च अथवा स्वक्षेत्र में स्थित होने से) यद्यपि वाछनीय है तथापि पक्षबल की अपेक्षा गौण ही है। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि किसी कुण्डली मे सूर्य दशम स्थान में उच्च होकर अर्थात् मेप राशि मे स्थित है और चन्द्र उच्च होकर अर्थात् वृषभ राशि (एकादश स्थान) में स्थित है, तो ऐसी स्थिति मे यद्यपि चन्द्र अपनी उच्च राशि मे है और एक प्रबल उपचय अर्थात् उत्तम एकादश स्थान मे भी है तो भी (क्योंकि सूर्य के अतीव समीप है) पक्ष बल में हीन है। इसी कारण से स्थान और राशि बल का विशेष लाभ चन्द्र को नहीं मिलेगा और चन्द्र निर्बल ही माना जायेगा अर्थात "माता" आदि जिन पदार्थों का चन्द्र कारक है उनको तथा लग्न जिसका कि चन्द्र स्वामी है

उसको हानि प्रदान करने वाला होगा। चन्द्र बल का निर्णय ज्योतिष शास्त्र में बड़े महत्व का विषय है क्योंकि प्रायः "बालारिष्ट" के महत्वपूर्ण योग चन्द्र की किसी न किसी दुर्बलता द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। इस सम्बन्ध में आप किसी भी परामाणिक ज्योतिष ग्रन्थ को उठाकर उसका "बालारिष्ट" प्रकरण पढ़िये तो आपको विदित होगा कि बालारिष्ट अधिकाश में चन्द्र के बलाबल पर ही निर्भर है। उदाहरणार्थ "बृहत् जातक" का निम्नलिखित श्लोक देखिये :—

"सुतमदन नवान्त्य लग्न रन्ध्रेषु
अशुभयुतो मरणाय शीत रश्मि

चन्द्र यदि पापी ग्रहो से युक्त होकर (और शुभ ग्रहों से अदृष्ट होकर) पञ्चम, सप्तम, नवम, लग्न अथवा अष्टम भाव में स्थित हो तो बालक मृत्यु को शीघ्र प्राप्त होता है।

कुमारो (बुधः) शीघ्रं फल यच्छतीत्याह।

यथा मनुष्यैः कौमार भावं
संलभ्यते जनितः शीघ्रमेव।
तथैव फलानां क्षिप्रं हि योगं
कुरुते बुधःसूर्यसुतोऽन्यथाहि ॥३६॥

मनुष्य का दीर्घ कालीन जीवन शिशु, कुमार, यौवन, प्रौढ़ तथा वृद्ध इन अवस्थाओं से मिलकर बनता है और इन अवस्थाओं में "कुमार" अवस्था को मनुष्य जीवन के प्रथम भाग के समीप ही पा लेता है। इसी प्रकार जब बुध अपनी दशा द्वारा अथवा किसी भाव के आधिपत्य द्वारा फलीभूत होकर दिखलाता है तो वह प्रादुर्भाव भी सम्पूर्ण अवधि के "कुमार" भाग (अर्थात् लगभग पहले ही भाग) में फलीभूत करवा देता है। इसके विपरीत, शनि अपने प्रभाव को अवधि

के अन्तिम भाग मे प्रदर्शित करता है। इस सम्बन्ध में अगले श्लोक में कहा है :—

अत्रोदाहरणम् ।

बुधस्स्वर्क्षे मदनस्थितश्चेद्भृगुसंयुतोऽर्कार्कीदृशासमेतः।
प्रथमेहिवर्षे स्त्री त्यागमाहुरेवं कुमारस्य कुमारभावम्॥३६॥

यदि बुध सप्तम भाव में निज राशि में स्थित हो, और शुक्र से युक्त हो, परन्तु सूर्य तथा शनि (अथवा सूर्य तथा राहु अथवा शनि तथा राहु) से युक्त अथवा दृष्ट हो तो विवाह के एक वर्ष के भीतर ही भीतर उस व्यक्ति की अपनी स्त्री से पृथकता (Seperation or Divorce) हो जाती है।

शीघ्र पृथकता का यह फल मुख्यतया इस कारण से हुआ कि "कुमार" निजनामानुकूल अपना फल विवाहित जीवन की अवधि के प्रथम ही भाग में देता है। पृथकता के कारण पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि सप्तम भाव, उसके स्वामी तथा उसके कारक (शुक्र) तीनों पर सूर्य तथा शनि का त्यागात्मक प्रभाव पड़ा, जिस कारण वश स्त्री से पृथकता हुई। इसी प्रकार स्त्री की कुण्डली में भी विचार करना चाहिये। जैसे धनु लग्न हो, गुरु, बुध युक्त, सप्तम स्थान में स्थित हो तथा उन दोनों पर किसी भी प्रकार का पृथकता जनक प्रभाव हो अर्थात् सूर्य शनि, सूर्य राहु, शनि राहु, किन्ही भी दो अथवा अधिक ग्रहों का उन (गुरु बुध) पर दृष्टि अथवा युति द्वारा प्रभाव हो तो (उसी स्थिति में पति भाव, उसका स्वामी, तथा पति कारक वृहस्पति) तीनों पर त्यागात्मक प्रभाव होने से शीघ्र ही वह स्त्री अपने पति द्वारा त्यक्त हो जायेगी। इन उदाहरणों में पृथकता का विवाहित जीवन की अवधि में शीघ्र ही हो जाना बुध के कारण

है, यही कुमार का कुमारत्व है। इसी बात को निम्नलिखित कुण्डली से देखिये। यहाँ सप्तम भाव तथा उसके स्वामी पर सूर्य तथा शनि का प्रभाव है। और सप्तम भाव के कारक शुक्र पर मध्यत्व द्वारा राहु तथा सूर्य शनि का। अतः पृथकता जनक प्रभाव तीनों अङ्गों पर विद्यमान पाया गया। यद्यपि गुरु की दृष्टि भी सप्तम भाव तथा उसके स्वामी बुध पर है तथापि यह दृष्टि सप्तम भाव के कारक शुक्र पर नहीं अतः गुरु पृथकता को न रोक सका। हाँ इतना अवश्य हुआ कि द्वितीय विवाह के अनन्तर प्रथम स्त्री से पुनः इसने मेल करवा दिया।
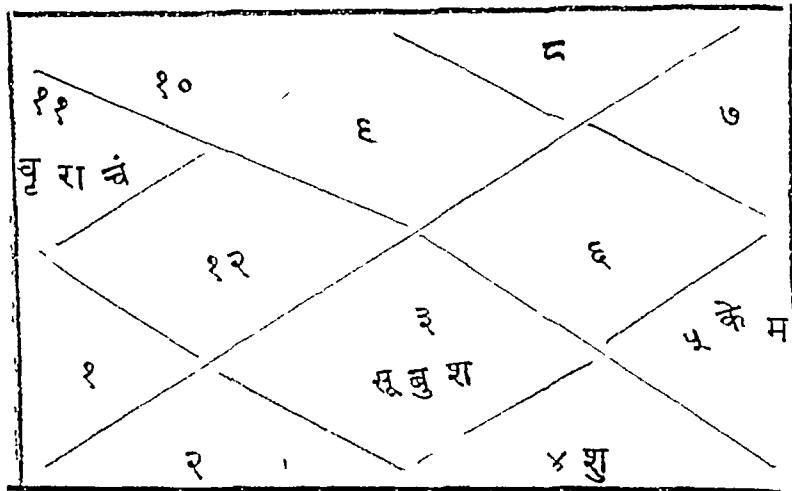
धर्मे विशेष रुचियोंगमाह।

बुधो यज्ञस्सदा प्रोक्तो विशेषेण नवमाधिपः।
अतस्तौलि स्थितो लग्ने धर्म प्रज्ञाप्रदस्स्मृतः॥४०॥

"बुध" को ज्योतिशास्त्र के आचार्यों ने "विष्णु" तथा "यज्ञ" संज्ञा से पुकारा है। अर्थात् यह ग्रह कारक रूप से ही दान, परोपकार, सेवा इत्यादिक सार्वजनिक शुभ कार्यों के करने वाला धार्मिक ग्रह

माना गया है। यह बुध विशेष रूप से शुभ कर्म कर्ता हो जाता है जबकि वह नवम भाव का स्वामी हो क्योंकि नवम भाव भी दान, परोपकार इत्यादि धार्मिक (Spiritual) बातों का भाव है। ऐसा नवमेश बुध यदि लग्न में स्थित हो जैसा कि तुला लग्न तथा मकर लग्न वालों के लिये सम्भव है, तो धार्मिक भावनाओं का सम्बन्ध मन (लग्न) से हो जाने के कारण बुध, मनुष्य के मन में धर्म कार्यों में विशेष रुचि उत्पन्न कर देता है। इसी सम्बन्ध मे देखिये महात्मा गाँधी जी की कुण्डली :—
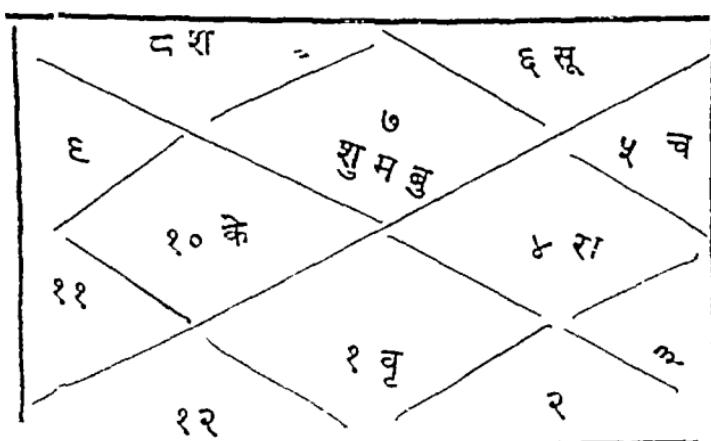
धर्मस्थानाधिपति बुध यज्ञ का रूप प्राप्त कर लग्न तथा लग्नाधिपति से युति सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। पुनः वह बुध लग्न में दिक बल को पाकर प्रबल भी है। शुक्र तथा बुध की इस धर्म प्रवर्धक युति पर आध्यात्मिक गुरू का दृष्टि प्रभाव भी है। अतः यह बुध गाँधी जी को सार्वजनिक कार्यों तथा परोपकार के कार्यों के करने की प्रेरणा देता रहा तथा शुक्र को सुसंस्कृत (Sublimate) करके उसकी प्रेम शक्ति को विश्व प्रेम तथा अहिंसा एव सत्य के रूप में परिवर्तित कर गाँधी जी को नीति में भी धर्म के प्रयोग करने पर बाधित करता रहा।

धर्म प्रज्ञा का यह योग स्वामी विवेकानन्द जी की कुण्डली मे भी विद्यमान है। यहाँ भी धर्म भाव का आधित्यपत्य यज्ञस्वरूप बुध को प्राप्त हुआ है। यज्ञीय बुध की लग्न में स्थिति मन में उच्चतम धर्म तथा परोपकार की भावनाओं को उत्पन्न करती है। इतना ही नहीं, पञ्चमाधिपति शुक्र भी लग्न मे ही है और चूँकि शुक्र नवम से नवम भाव का स्वामी है अतः भावात् भावम् के सिद्धान्तानुसार वह भी धर्म बुद्धि का प्रतीक हुआ—लग्नाधिपति शनि ने स्वयं धर्म स्थान में पहुँचकर योग को और भी सुदृढ़ बना दिया है। नोट करने योग्य बात यह भी है कि धर्म प्रज्ञा द्योतक बुध तथा शुक्र ग्रहों का योग न केवल लग्न से है बल्कि आत्मा तथा लग्न रूप सूर्य से भी है। अतः विविध प्रकार से धर्म तथा यज्ञीय भावनाओं का समावेश लग्न सूर्य तथा चन्द्र से होने के कारण, स्वामी जी के व्यक्तित्व मे धर्म के प्रति रुचि सुदृढ़ रूप से पाई गई थी।
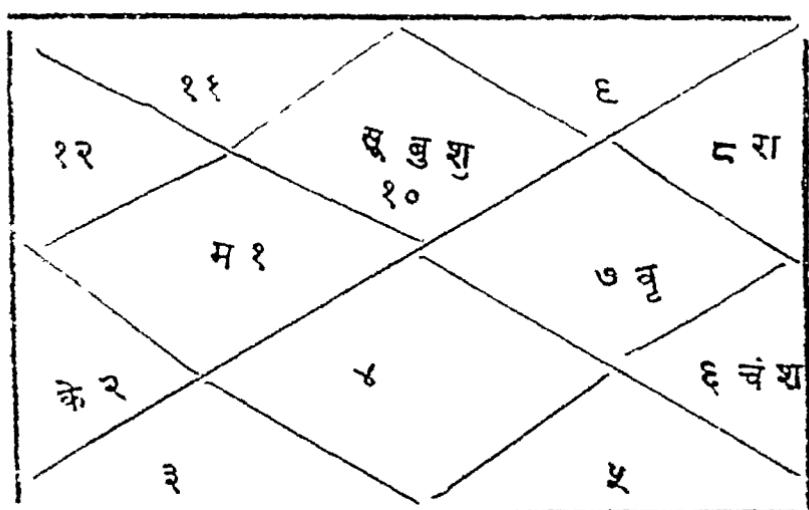
इसी सम्बन्ध में श्री रामकृष्ण परम हँस की कुण्डली भी देखन योग्य है।

लग्न में सूर्य तथा चन्द्र विद्यमान हैं जिसका अर्थ यह हुआ कि लग्न सूर्य लग्न तथा चन्द्र लग्न तीनों एक ही स्थान को प्राप्त हुए

हैं। अतः शनि केवल लग्नाधिपति ही नहीं बल्कि चन्द्र लग्नाधिपति तथा सूर्य लग्नाधिपति भी है। ऐसे त्रिविध लग्नाधिपति का धर्म स्थान में जाकर उच्च हो जाना धर्म से तन तथा मन का विशेष सम्बन्ध स्थापित करता है। पुनः शनि पर आध्यात्मिक गुरु की दृष्टि भी है और उधर बुध भी तीनों लग्नों को प्रभावित कर रहा है। और बुध है पञ्चमाधिपति अर्थात् नवम से नवम घर का स्वामी। अतः यशीय बुध का धार्मिक सम्बन्ध समस्त व्यक्तित्व से हो रहा है। ऐसी स्थिति में यदि परम हँस जी का अङ्ग-अङ्ग सलग्नता पूर्वक अध्यात्म में डूबा हुआ था तो इसमें आश्चर्य की क्या बात थी।
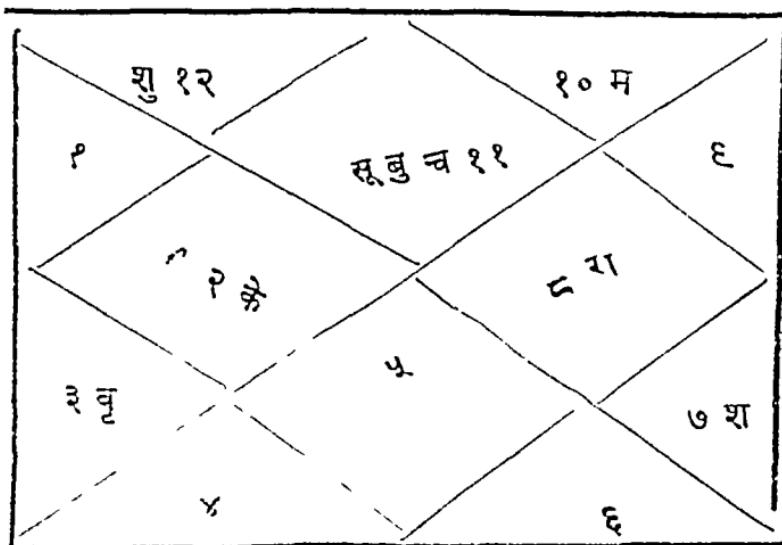
भृगो द्वादश स्थिते विशेष फल माह।

भोगात्मको भृगो रूप द्वादश भोगमेव च।
तस्माद्द्वादशगो शुक्रो भोगान् सम्यक् प्रयच्छति ॥४१॥

शुक्र का स्वरूप भोगात्मक है। अर्थात् शुक्र भोगप्रिय ग्रह है। कुण्डली में द्वादश स्थान भी "भोग" का स्थान है। क्योंकि "त्याग" "भोग" "विवाह" का विचार (त्याग भोग विवाहेशु ··) द्वादश भाव से करना ज्योतिषज्ञों को सम्मत है। वैसे भी "व्यय" भोग ही,

का दूसरा रूप है। इसलिये जब शुक्र किसी कुण्डली मे द्वादश स्थान में स्थित होता है। तो मनुष्य को भोगो की प्राप्ति होती है। यह बात युक्ति युक्त भी है। क्योकि जब एक ही तथ्य के द्योतक दो ग्रह परस्पर मिलते हैं तो वे जीवन मे उस बात को ला खड़ा करते हैं जो बात कि उन दोनों में समान (Common) होती है। जैसे एकादश स्थान का स्वामी यदि धन स्थान के स्वामी से युक्त हो तो शास्त्रों ने इस योग को महा धनदायक योग माना है कारण यही है कि धनाधिपति तथा लाभाधिपति एक ही तथ्य (धन) के दर्शाने वाले हैं। इसी नियम का विनियोग करते हुए हम कह सकते हैं कि भोगात्मक शुक्र की भोगस्थान अथवा उसके स्वामी से युति भोगप्रद अवश्य होगी।

शुक्रवशाद्धनबहुत्व योगमाह।

कथितैर्नियमैरेवं द्वादश स्थानगो भृगुः
अन्त्यपेन च संयुक्तो विशेषेण धनदायकः॥४२॥

उपरोक्त नियम के अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि यदि शुक्र द्वादश स्थान में हो और उसी स्थान में द्वादशाधिपति भी हो तो शुक्र विशेष धनदायक माना जायेगा। कारण, कि ऐसी स्थिति मे शुक्र का सपर्क न केवल द्वादश स्थान से है बल्कि "भोग" द्योतक द्वादश स्थानाधिपति से भी है। चूँकि भोगो का विशेष होना भी धनी होने का सूचक है अतः यह योग उत्तम धन दायक योग है इसमे सन्देह नहीं। शुक्र की द्वादश स्थान मे स्थिति शुभ फल देती है तथा योग करती है इसमे "भावार्थ रत्नाकर" की साक्षी भी है।

मेषे जातस्य धनपो व्ययस्थोऽपि कविशुभः
इतर ऋक्षे तु जातस्य व्ययस्थो धनपोऽशुभः।

अर्थात मेष लग्न वालों के लिये तो धनाधिपति (शुक्र) का द्वादश स्थान में बैठना शुभ है परन्तु दूसरे किसी लग्न के होने से

जहाँ कि शुक्र द्वितीयेश न बनता हो, द्वितीयेश का द्वादश स्थान में बैठना अशुभ है। तात्पर्य यह कि शुक्र को द्वादश स्थान में बल मिलता है, और किसी ग्रह को नहीं।

इसी बात को भावार्थ रत्नाकर में अन्यत्र और स्पष्ट रूप से कहा है।

"कर्कि जातस्य शुक्रस्तु व्ययस्थो धनगोऽपि वा
योग प्रदस्तु भवति हि अन्यत्र न हि योगदः।

अथात कर्क लग्न हो और शुक्र द्वादश अथवा द्वितीय स्थान में हो तो लाभ दायक होता है। अन्य किसी भाव में ऐसा लाभकारी नहीं। इस श्लोक से भी इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि शुक्र का द्वादश स्थान मे बैठना शुभता का सूचक है।

यहाँ तक ही नहीं, शुक्र यदि छटे स्थान में हो तो भी अच्छा माना जाता है। यहाँ भी कारण यही है कि छटे पड़े हुए शुक्र की दृष्टि भोग स्थान अर्थात द्वादश स्थान पर पड़ेगी जिस द्वारा मानों शुक्र की भोगात्मक प्रवृति का मिलन भोग स्थान से होकर भोगों की वृद्धि का हेतु होगा। भावार्थ रत्नाकर ने इस संबन्ध में भी कहा है।

शुक्रस्य षष्ट संस्थानं योगदं भवति ध्रुवम्
व्यय स्थितस्य शुक्रस्य यथा योगं वदन्ति हि।

अर्थात शुक्र का छटे स्थान में पड़ जाना निश्चित रूप से "भोग" अर्थात धन आदि के देने वाला है जैसा कि शुक्र का द्वादश स्थान में पड़ जाना।

इसी प्रकार "उत्तर कालामृत के रचयिता का विचार भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा है।

स्वोच्चस्वर्क्षं सरेज्यभस्थरविजो लग्न स्थितोऽपीष्टकृत्
शुक्रो द्वादश संस्थितोऽपि शुभदो मन्दांश राशी विना।

शनि यदि लग्न में भी हो परन्तु अपने उच्च अथवा स्वक्षेत्र में हो अथवा गुरु की राशियों में हो तो शुभदायक है। शुक्र द्वादश स्थान में भी स्थित होते हुए शुभता के देने वाला है यदि वहाँ शनि की राशि अथवा अंश (नवांश) में न हो।

उत्तर कालामृत मे शुक्र की छटे स्थान मे पड़ने की शुभता के सबन्ध में भी कहा है।

षष्टस्थ. शुभ कृत्कविः स्मर गृह ज्ञानाय मान स्थितः
राहुयोग कस्तृतीय ' निलये केतुस्तुयोगप्रदः

कि षष्ट स्थान में स्थित कवि अर्थात शुक्र शुभ फल के देने वाला होता है इत्यादि।

शुक्रस्य द्वादशस्थित्यान्यगृहेषु प्रभाव माह।

यद्भावा द्वादशगो शुक्रो यद्भावेशात्तथैवच
यत्कारकाच्च सोन्त्यस्थो नूनं तान् वृद्धिदो भवेत् ॥४३॥

शुक्र जिस भाव से द्वादश स्थान में स्थित हो अथवा जिस भाव के स्वामी से द्वादश स्थान में पड़ा हो अथवा जिस "कारक" से वह द्वादश स्थान में स्थित हो उन सब की वह वृद्धि करने वाला होता है। यह ग्रन्थकार का विशेष अनुभव है।

अत्रोदाहरणम्।

कुभालि लग्न जातस्य शुक्रो जन्मगतो यदि
गुरूश्च धनभावस्थो लक्ष लक्षाधिपो ध्रुवम् ॥४४॥

कुम्भ लग्न मे अथवा वृश्चिक लग्न में जन्म हो और शुक्र लग्न में स्थित हो तथा गुरु द्वितीय भाव मे हो तो मनुष्य लाखो रूपयों का

स्वामी धनी होता है। कारण यह कि दोनों ही स्थितियों मे गुरू द्वितीय भाव मे न केवल द्वितीय भावाधिपति होकर स्थित होगा बल्कि धन कारक होते हुए भी धन भाव में ही होगा। ऐसी दशा में शुक्र की लग्न मे स्थित द्वितीय भाव से, उसके स्वामि से तथा उसके कारक से द्वादश होगी। अतः इस द्वादश स्थिति का लाभ तीनों अङ्गो (factors) को प्राप्त होगा जिससे धन का विशेष मात्रा में मिलना निश्चित ही होगा।

शुक्रस्य पंचमभावसम्बन्धी उदाहरणमाह।

सिंहालि लग्न जातस्य पञ्चम स्थानगो गुरू
स्तुर्ये च यदा शुक्रो बहु पुत्र प्रदस्स्मृतः ॥४५॥

सिंह अथवा वृश्चिक लग्न में जन्म हो, गुरू पञ्चम भाव में हो तथा शुक्र चतुर्थ भाव में हो तो ऐसा योग बहुत "पुत्रों" के देने वाला होता है। कारण स्पष्ट है कि दोनों ही स्थितियों में शुक्र पञ्चम भाव से, पञ्चमाधिपति से, तथा पञ्चमभावकारक (अथवा पुत्र कारक) गुरू से द्वादश में होने के कारण तीनों ही अङ्गों (Factors)को प्रचुरता देगा। जिसके फलस्वरूप पुत्रों का अधिक सख्या में प्राप्त होना तर्क सम्मत है।

उपरोक्त दो श्लोकों द्वारा यह दर्शाने की चेष्टा की गई है कि किस प्रकार स्वक्षेत्री धनकारक तथा स्वक्षेत्री पुत्र कारक से शुक्र का द्वादश स्थान मे पड़ना धन तथा पुत्रों की प्राप्ति एव प्रचुरता का द्योतक है। परन्तु यह दो उदाहरण तो उपलक्षण मात्र हैं, नियम तो बहुत व्यापक है तथा इसका प्रयोग सर्वत्र किया जा सकता है। जैसे यदि शुक्र राज्य द्योतक ग्रहादि से द्वादश होगा तो राज्यादि कीप्राप्ति

को दर्शाने वाला होगा । इस बात को हम "राज्य" के उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं ।

परन्तु इससे पूर्व कुछ एक बातों का उल्लेख करना आवश्यक है । "राज्य" का विचार केवल दशम भाव से ही नहीं होता अपितु लग्नाधिपति से भी होता है। सूर्य की प्रबलता का विचार भी इस संबन्ध में अत्यावश्यक है क्योंकि सूर्य "राज्य" का कारक है । सप्तम भाव का विचार भी "राज्य" की विवेचना में आवश्यक है क्योंकि यह भाव दशम से दशम होने के कारण "राज्य" से संबन्धित है । इसी प्रकार द्वितीय भाव का भी विचार इस सबन्ध में उपयुक्त है क्योंकि द्वितीय भाव शासन (ruling powers) का भाव है । इस विषय में देखिये "सर्वार्थचिन्तामणि" का निम्नलिखित श्लोक जिससे द्वितीय भाव का शासन संबन्धी महत्व आप पर प्रकट हो जायेगा ।

"स्वोच्चे सुहृद् स्वगेहे तदीशे (द्वितीय भावस्य ईशे)
सिंहासने तद्भवनेश्वरे वा पारावतांशे
गुरु दृष्टि युक्ते शतत्रयं शास्ति जातपुण्यः ।

अर्थात यदि द्वितीय भाव का स्वामी सिंहासन पारावतांश आदि में बली होकर गुरू द्वारा दृष्ट हो तो सैंकड़ों मनुष्यों पर वह राज्य करता है ।

इस प्रकार हमने देखा कि लग्न, द्वितीय भाव, सप्तम भाव, दशम भाव तथा सूर्य यदि यह सब अथवा इनमें से अधिकतर बली हों तो राज्य की प्राप्ति होती है । अब हम इस विषय के "राज्य" सबन्धी उदाहरण देते हैं । सबसे पूर्व देखिये राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी की कुण्डली ।
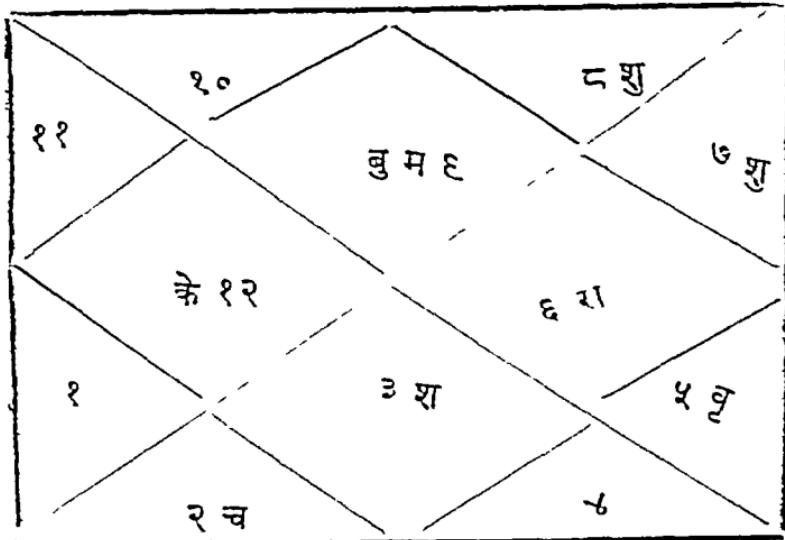
सूर्य जो राज्य कारक है स्वयं भाग्याधिपति होकर मानों कह रहा है कि मुझमें शक्ति है कि चाहूं तो भाग्य में राज्य लिख दूँ पर क्या करूँ मेरी स्थिति त्रिकभवन (द्वादश स्थान) में हो गई है जिसके कारण राज्य देने की बजाय बहुत देर तक मैं राज्य सचालकों से विद्रोह करवाऊँगा। परन्तु घबराइए नहीं मुझमेंकुछ एकऐसी विशेषताएँ भी हैं जिनके कारण मैं अवश्य एक दिन जातक को राज्य दिलाकर रहूँगा। उनमें पहली विशेषता यह है कि द्वादश स्थान में होता हुआ भी मैं अपने मित्र मङ्गल की राशि में हूँ। दूसरी विशेषता यह है कि मेरे आस पास एक ओर बुद्ध है दूसरी ओर शुक्र अर्थात मुझको शुभ मध्यत्व प्राप्त है। तीसरी विशेषता यह है कि पूर्णिमा के समीपतम रहने वाला प्रबल चन्द्रमा अपने उच्चत्व को प्राप्त करके तथा अधिक बली होकर मुझ पर अपनी पूर्ण शुभ दृष्टि डाल रहा है। चौथी विशेषता यह है कि मेरा मित्र गुरू जो "राज्य कृपा" का भी ग्रह है और स्वय लग्नेश भी है बल्कि केतु की राशि का स्वामी होने से और भी प्रबल लग्नाधिपति का रूप धारण किये हुए है, मेरी राशि में स्थित होकर मुझ (सूर्य) से दशम केन्द्र मे स्थित होकर मुझको बल प्रदान कर रहा है। और पाँचवीं सर्वोत्तम विशेषता

यह है कि स्वक्षेत्री शुक्र स्वय मुझसे द्वादश विराजमान होकर मुझको बल की प्रकर्षता दे रहा है। अतः मुझे राज्य देने की शक्ति का पूर्ण विश्वास है। इस पर भी जातक को दशम भाव से अतिरिक्त सहायता मिल रही है जो कि बुध के अपनी एक (मिथुन) राशि को देखने तथा स्वय लग्नाधिपति एव शुभ ग्रह गुरू द्वारा दृष्ट होने का रूप धारण किये हुये है। पुनः दशम भाव पर भी शुक्र तथा गुरू द्वारा शुभ मध्यत्व है। दशमेश राहु की राशि का स्वामी होकर बली है तथा द्वितीयाधिपति शनि केन्द्र में दिक्‌बल को प्राप्त कर दशमाधिपति से दृष्ट है। मङ्गल की दृष्टि अनिष्ट कारक अवश्य है जिससे राज्य प्राप्ति मे विलम्भ तथा सघर्ष इत्यादि हुआ परन्तु शनि की स्थिति तथा शनि बुद्ध का परस्पर वीक्षण द्वितीयाधिपति, दशमाधिपति का परस्पर वीक्षण होने के कारण राज्य प्राप्ति का सूचक है। इस प्रकार जहाँ हमने राष्ट्रपति की कुण्डली में विविध राजयोग देखे वहाँ नोट करने वाली विशेष बात प्रस्तुत प्रकरण मे शुक्र का नवमाधिपति सूर्य से द्वादश होना है।
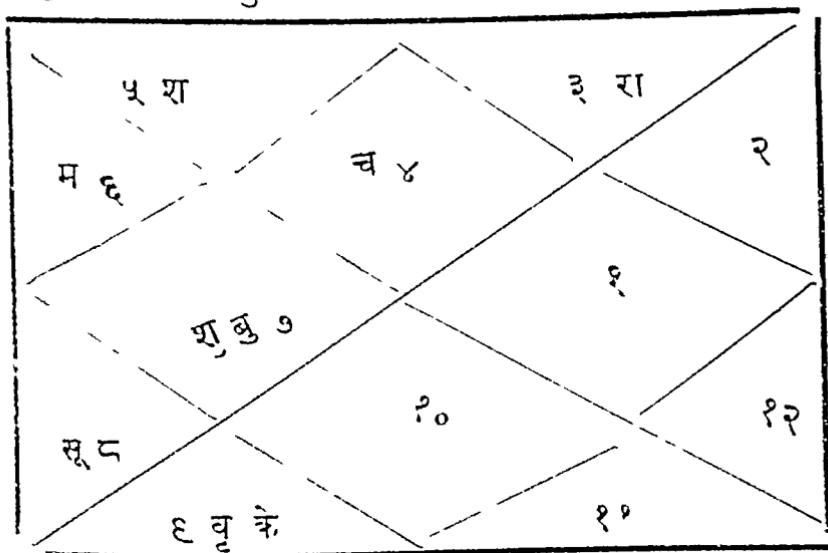
अब लीजिए प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू जी की कुण्डली। यहाँ भी आप देखेगें कि सूर्य को द्वितीय स्थानका आधिपत्य प्राप्त हुआ है और जैसा कि हम बता चुके हैं द्वितीय स्थान शासन

का स्थान है। अतः यदि सूर्य इस कुन्डली में बली होता है तो इस का अर्थ होगा शासन की प्राप्ति। शुक्र तो सूर्य से द्वादश है ही, गुरू और शुक्र बुद्ध ने सूर्य को शुभमध्यत्व भी दिया हैं। अतः राज्य कारक तथा द्वितीयाधिपति सूर्य बलवान सिद्ध होता है। दशम स्थान तो इस कुण्डली में विशेष बली स्पष्ट दीख ही रहा है क्योंकि दशमाधिपति मङ्गल स्वयं दशम स्थान को देख रहा है और उसी दशम स्थान पर शुक्र बुध तथा केतु विशिष्ट गुरू की चार शुभ दृष्टियाँ पड़ रही हैं। सप्तम स्थानाधिपति शनि अपनी एक राशि कुम्भ को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है और स्वय प्रबल गुरू से दृष्ट है जिसका फल यह हुआ है कि शनि की दूसरी राशि के स्थान अर्थात सातवे भाव को भी बल मिल रहा है। सप्तम स्थान का बली होना भी राज्य प्राप्ति मे सहायक है, यह हम देख ही चुके हैं, अस्तु यहाँ देखना केवल इतना है कि किस प्रकार शुक्र की द्वादश स्थिति से सूर्य को लाभ पहुँचता है। इस संबन्ध मे प्रेजिडेन्ट आइजन्होवर की कुण्डली भी देखने योग्य है।
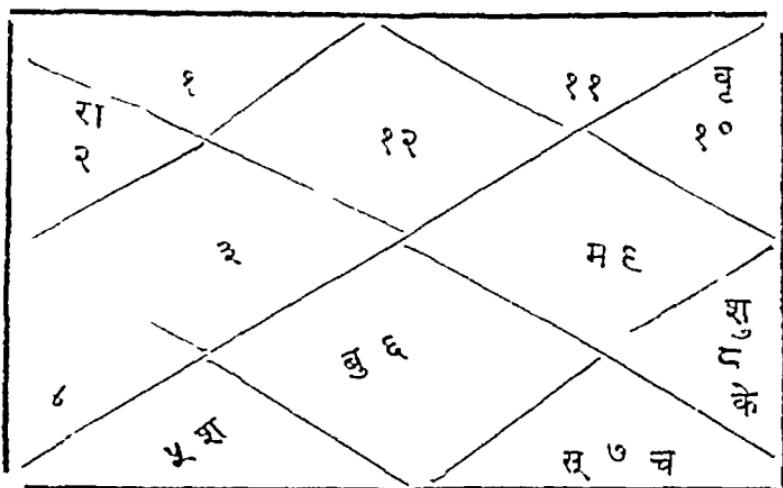
इनको सब कुच्छ इनकी सैनिक शक्ति के कारण प्राप्त हुआ। फौजी शक्ति का कारक मगल स्वय शासन भाव (द्वितीय)

का स्वामी है और न केवल केन्द्र में ही है अपितु अपने [illegible] गुरू को राशि में स्थित है और उच्चाभिलाषी है। और फिर मंगल पर गुरु तथा शुक्र का केवल शुभ मध्यत्व ही नहीं शुक्र मंगल से द्वादश भी है। सप्तमाधिपति, बुद्ध स्वक्षेत्री तथा गुरू द्वारा दृष्ट है। दशमाधिपति गुरू नीचका होता हुआ भी स्थान बल से बली है। सूर्य यद्यपि अष्टङ्गत है तथा नीच भी है फिर भी चन्द्र से युक्त, बुध शुक्र से घिरा हुआ तथा गुरू से केन्द्र मे है अतः निर्बल नहीं कहा जा सकता। अस्तु यहाँ नोट करने वाली बात यही है कि शुक्र का मंगल से द्वादश बैठना मंगल की शक्ति को बढ़ा रहा है; इस प्रकार यदि आप मुग़ल सम्राट अकबर की कुण्डली देखेंगे तो यहाँ भी आप को सूर्य एक उच्च स्थान (एकादश) तथा लाभ का स्वामी मिलेगा जो स्वय भी राज्य दिलाने की सामर्थ्य
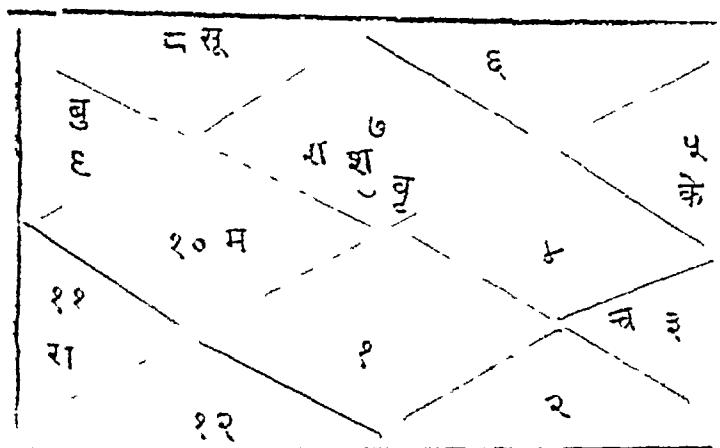
का सूचक है। यहाँ सूर्य केतु की राशि का स्वामी भी है अतः विशेष लाभाधिपति हुआ, ऐसा सूर्य द्वितीय (शासन) स्थान में स्थित है। शुक्र, द्वीतीय स्थान तथा सूर्य दोनों से द्वादश होने के कारण दोनो को पुष्ट कर रहा है इसके अतिरिक्त सूर्य शुभ मध्यत्व में भी है। द्वितीय तथा सप्तमाधिपति मंगल उच्च राशि का पर्याप्त बली है, विशेषतया जबकि गुरु शुक्र तथा योगकारक शनि मंगल से केन्द्र मे हैं। चन्द्र

न केवल पक्ष बल में विशेष बली ही है बल्कि बुद्ध तथा गुरु से शुभ दृष्ट भी है। अतः दशमाधिपति भी प्रबल हुआ। इस प्रकार "राज्य" सबन्धी भावों तथा ग्रहों के विचार से राज्य प्राप्ति सिद्ध होती है।

शनि कदा रोगद इत्याह।

सिंह कन्ययोस्तु जातानां सूर्य सोमात्मज तथा
लग्नद्वय च यदा पश्येद्दीर्घ रोग प्रदो शनिः॥४६॥

सिह अथवा कन्या लग्न हो, और शनि की दृष्टि सिह अथवा कन्या लग्न पर पड रही हो तथा वह दृष्टि सूर्य अथवा बुध, लग्नों के स्वामियों पर भी पड रही हो, तो शनि मनुष्य को दीर्घ रोगी बना देता है। इसमे युक्ति स्पष्ट है। शनि ज्योतिष शास्त्र मे नैसर्गिक "रोग कारक" माना गया है। अतः लग्न तथा लग्न के स्वामी दोनों पर शनि की दृष्टि रोग दे सकती है। अब जबकि शनि रोग स्थान का स्वामी भी हो जावे जैसा कि वह सिह तथा कन्या लग्न वालों के लिये हो जाता है तो उसकी दृष्टि रोग देगी इसमें सन्देह न होना चाहिये। यहाँ विशेष और भी है, वह यह कि यदि सिह तथा कन्या लग्न वालों के छटे स्थान में राहु अथवा केतु स्थित हो तो शनि इन छाया ग्रहों का प्रतिनिधित्व भी करेगा। अतः रोग कारक, रोग स्थान का स्वामी, तथा राहु (अथवा केतु) के स्थान का स्वामी होने से शरीर (लग्न) को यदि विशेप रोग दे तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है।

यहाँ इतना और विशेष उल्लेख कर देना उचित होगा कि उपरोक्त प्रकार का शनि अर्थात छटे भाव में राहु अथवा केतु के स्थित होते हुए छटे घर का स्वामी शनि जिस भाव में स्थित होगा उसकी भी हानि करेगा। निम्नलिखित कुन्डली मे राहु षष्ट स्थान में

स्थित है, अतः कोई भी षष्टेश राहु के प्रभाव को लेकर ही कार्य करेगा। जब स्वयं रोग कारक शनि ही रोग स्थानाधिपति है तब तो
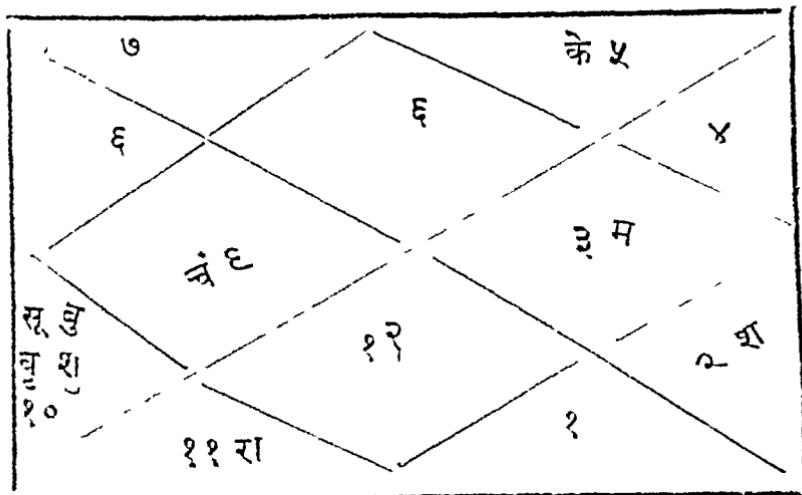
शनि तीन प्रकार से रोग का प्रतिनिधि हुआ। ऐसे शनि का नवम स्थान में बैठना उस स्थान को अवश्य हानि पहुँचायेगा, विशेषतया जबकि नवम राशि (धनु) का स्वामी गुरू भी नीच होकर सूर्य के साथ है। जातक २० वर्ष की आयु में, जंघा के रोग से, जिसका आक्रमण कमर के समीप हड्डी पर हुआ, पीड़ित हुआ और आज तक पीडित है। श्लोक में कहे हुए यो। का उदाहरण निम्नलिखित कुन्डली में देखिये।
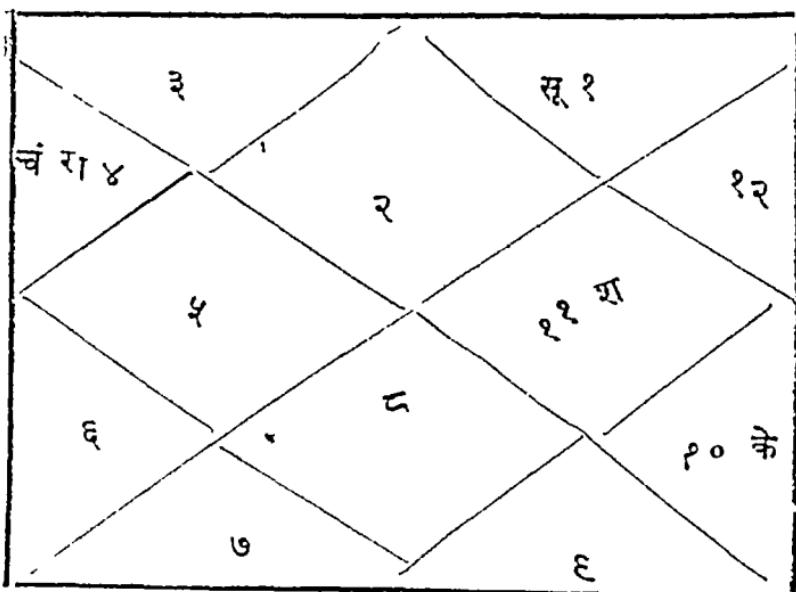
यहाँ मातृ स्थान (चतुर्थ) पर प्रबल शनि (जो कि मातृ स्थान (चतुर्थ) से छटे घर का स्वामी है, तथा उस छटे घर मे केतु होने से केतु के प्रभाव को भी लिये हुए है) की दृष्टि है। चतुर्थ भाव के लिये रोग देने वाले ऐसे शनि की दृष्टि चतुर्थ भाव के स्वामी सूर्य पर भी है। उधर चतुर्थ भाव का कारक चन्द्र भी राहु से युक्त है अतः शनि की इस व्यापक दृष्टि का प्रभाव व्यक्ति की माता को दीर्घ रोगिनी बना रहा है।

भाव विशेष फल अध्याय

लग्न विषये आह ।

भावेशु लग्नं प्रथमं हि यस्मात्
विचार्यमत्र प्रथमानि सर्वाणि ।
वस्तूनि जन्म प्रभवाणि यानि
वर्णो शिरो जात्युपलक्षितानि ॥४७॥

क्योंकि सब भावों में "लग्न" का स्थान "प्रथम" है अतः लक्षणशास्त्र (Science of Symbology) के नियमानुसार जितनी बातें "प्राथमिकता" लिये होती हैं तथा वह सब बातें जो कि मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त हो जाती है उनका विचार लग्न द्वारा ही करना चाहिये । जैसे अंगो मे "शिर" प्रथम अंग है अतः शिर का विचार लग्न द्वारा किया जाता है । इसी प्रकार मनुष्य के शरीर का रङ्ग उसको जन्म से ही प्राप्त होता है, उसकी ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि संज्ञा भी जन्म से ही मानी जाती है । अतः मनुष्य किस जाति विशेष में उत्पन्न हुआ इस बात का निर्णय भी लग्न से ही करना चाहिये । यह उदाहरण उपलक्षण मात्र है अन्य ऐसी ही बातों का विचार भी लग्न से ही करना चाहिये, जैसे अतीव शिशु कालीन बातों का विचार, शरीर की लम्बाई, जन्म स्थान, इत्यादि-इत्यादि ।

उदाहरणार्थ देखिये निम्नलिखित कुण्डली, इस व्यक्ति का जन्म अपनी माँ के घर अर्थात् माँ के बाप के घर हुआ । लग्नाधि-

पति स्वय सूर्य है जो अपने भाव में भी लग्नवत है अतः सूर्य का चतुर्थ भाव में जो कि माता का स्थान है जाना माँ के परिवार में जन्म को दर्शा रहा है। और चन्द्र भी जो लग्न की भाँति ही विचारणीय है, चतुर्थ भाव पर पूर्ण दृष्टि द्वारा सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। इस प्रकार लग्न सूर्य तथा चन्द्र का सम्बन्ध चतुर्थ भाव से होने के कारण व्यक्ति का जन्म चतुर्थ भाव सम्बन्धी स्थान अर्थात मातृ पक्ष में हुआ।
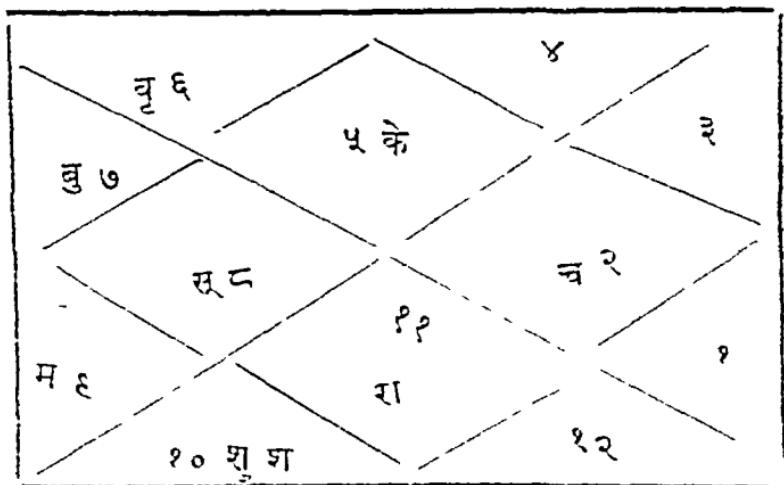
क्योंकि लग्न का सम्बन्ध जन्म कालीन सब बातों से है अतः मनुष्य की जन्मकालीन आर्थिक दशा का विवरण भी लग्नेश द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इसमें "सर्वार्थचिन्तामणि" का प्रमाण है।

"लग्नेशुभेशोभन दृष्टि युक्ते बाल्यात्सुखम्"

अर्थात लग्न यदि बलवान हो अर्थात शुभ ग्रहों द्वारा दृष्ट अथवा युक्त हो तो मनुष्य बालकाल से ही सुखी होता है। प्रसङ्ग वश यहाँ यह भी बता दें कि इसी नियम का अनुसरण करते हुए कुमार तथा विद्याकालीन अवस्था का विवरण द्वितीय भाव से तथा उसके

स्वामी से, यौवन का तृतीय भाव तथा उसके स्वामी से तथा बुढ़ापे का चतुर्थ भाव तथा उसके स्वामी इत्यादि से किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ यदि द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी पर शनि राहु तथा सूर्य का प्रभाव हो तो इसका अर्थ यह होगा कि वह मनुष्य बचपन में अपने कुटुम्ब अर्थात माता-पिता से पृथक रहकर विद्या अध्ययन करेगा। जैसा कि देखा जाता है बहुधा लोग छात्रवास में माता पिता से दूर रह कर विद्या का अध्ययन करते हैं।

केन्द्रगत ग्रहाणां सर्वदा लग्ने प्रभावमाह।

परस्पर केन्द्र गता खेटाः प्रभावञ्चदद्यु मिथः
कारणादस्माच्छुभाः केन्द्रे लग्नस्यातीव वर्द्धकाः ॥४८॥

ग्रह जब एक दूसरे से केन्द्र में होते हैं तो परस्पर प्रभाव को देने वाले होते हैं। यही कारण है कि शुभ ग्रहों का केन्द्र स्थान अथवा स्थानों में स्थित होना लग्न की वृद्धि का कारण माना गया है। शास्त्रों मे जहाँ-जहाँ आयुर्दाय के सबन्ध में कुच्छ लिखा है वहाँ २ लग्न की पुष्टि से अथवा लग्नेश की प्रबलता से दीर्घ आयु योग माना है। केन्द्र में स्थित शुभ ग्रह दीर्घ आयु देते हैं इसका कारण यही है कि उनकी ऐसी स्थिति लग्न को बली बनाती है। लग्न का आयु स्थान के रूप मे बली होना आयु की वृद्धि में युक्तिसगत कारण है। इस संबन्ध में कहा भी है :

"शुभ वर्गोत्तमे जन्म वेशि स्थाने च सद्ग्रहे
अशून्येशु च केन्द्रेशु कारकाख्य ग्रहेशु च।

अर्थात केन्द्रों का ग्रहयुक्त होना शुभ है (क्योंकि इससे लग्न मे क्रिया का संचार होता है जो मनुष्य को कर्मशील बनाता है) इसी प्रकार "कारकाख्य" योग मे जन्म लेना भी शुभ है।

कारकारव्य योग तब बनता है जब कि ग्रह स्वक्षेत्र अथवा उच्चराशि में होकर परस्पर केन्द्रगत हों। (यह आवश्यक नहीं कि वह लग्न से भी केन्द्र में हो) यहाँ भी परस्पर केन्द्र स्थिति वशात ही प्रभाव की उत्पत्ति अभीष्ट है।

इस प्रकरण में "कारकारत्य" योग की परिभाषा महर्षि पाराशर ने "पाराशर वृहत्होरा शास्त्र में दी है। लिखा है

स्वर्क्षे स्वोच्चे च मित्र ऋक्षे मिथः केन्द्र गता ग्रहाः
ते सर्वे कारकाः तेशु कर्मगस्तु विशेषतः

अर्थात् जब कोई ग्रह परस्पर केन्द्र गत हों और अपनी उच्च राशि अथवा निजराशि अथवा मित्रराशि मे स्थित भी हो तो वे सब "कारक" सज्ञा वाले होते हैं विशेष कर वह ग्रह जो किसी दूसरे ग्रह से दशम में स्थित हो।"

पाश्चात्य ज्योतिप में केन्द्र दृष्टि अथवा प्रभाव को माना है यद्यपि पश्चात्य विद्वान अधिकतर केन्द्र दृष्टि (Square Aspect) को सर्वदा अनिष्ठप्रद मानते हैं तथापि आधुनिक युग के पाश्चात्य ज्योतिषी भी अब इस भारतीय दृष्टि कोण से दिन प्रतिदिन सहमत होते जा रहे हैं कि केन्द्र दृष्टि का प्रभाव सर्वदा अनिष्ट नहीं होता उसका अच्छा अथवा बुरा होना ग्रहों की शुभता अथवा अशुभता पर निर्भर है। इस सबन्ध मे उदाहरणार्थ देखिये शास्त्रोक्ति

"चन्द्राद्दशमे भानु मातु मरणं करोति पाप युतः"

अर्थात यदि चन्द्र से दशम स्थान में सूर्य हो और चन्द्र पापी ग्रहों से युक्त भी हो तो माता को अल्प जीवी बनाता है। स्पष्ट है कि चन्द्र से केन्द्र स्थान में होने के कारण सूर्य का प्रभाव चन्द्र

पर पड़ेगा जो अनिष्ट प्रद होगा विशेषतया जब कि चन्द्र पाप युक्त भी हो।

"कारकाख्य" योग का उदाहरण आप को श्री मेनन (मन्त्री रक्षा विभाग) की कुण्डली में मिलेगा। यह कुण्डली नीचे दी जाती है।
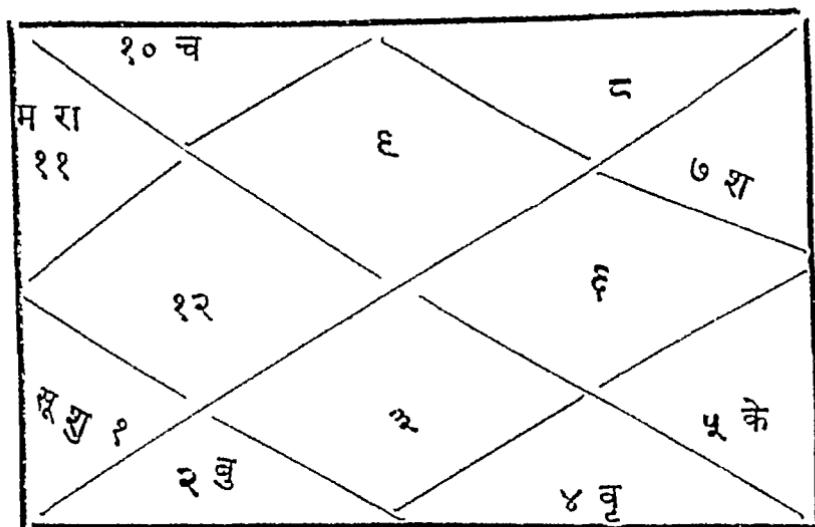
यहाँ सूर्य, शनि तथा बृहस्पति अपनी-अपनी उच्च राशियों में स्थित होकर एक दूसरे से केन्द्र में स्थित हैं। इसी लिये कारकाख्य योग की उत्पत्ति परस्पर प्रभाव द्वारा कर रहे हैं। जैसा कि इस कुण्डली से पता चलता है यह बात कोई आवश्यक नहीं कि ग्रह लग्न से भी केन्द्र मे हो। निष्कर्ष यह कि ग्रहो का अपनी स्थिति से केन्द्र स्थानों में प्रभाव रहता है। यह नियम है कि केन्द्र स्थानों में यदि शुभग्रह स्थित होंगे तो उन शुभ ग्रहो के केन्द्रीय प्रभाव के कारण लग्न बलवान माना जायेगा। और यदि केन्द्र स्थानों में पापी ग्रह स्थित होंगे तो उसी केन्द्रीय प्रभाव के कारण लग्न निर्बल माना जायेगा। स्पष्ट है कि लग्न के बली होने से आयु की वृद्धि तथा लग्न के निर्बल होने से आयु की हानि होगी। इस सम्बन्ध मे सर्वार्थ-चिन्तामणि के निम्नलिखित श्लोक देखिये जिनमें बालारिष्ट योग के तथा अल्प आयु योग के होने में केन्द्र स्थानो का पाप युक्त होना

भी कारण माना है। हेतु वुही है जो ऊपर दिया जा चुका है अर्थात आयुदर्शक लग्न का निर्बल हो जाना।

"राहौ केन्द्रे पापयुक्ते क्षिते वा क्षिप्रं नाशं याति सौम्यैरदृष्टे पाप केन्द्रे वार्कि लग्ने त्रिकोणे सौम्यैः पष्टे चाष्टमे ऽन्त्ये च वालः"

और भी कहा है।

केन्द्रैश्चन्द्रात् पापयुक्तैरसौम्यै स्वर्ग याति प्रोच्यते वत्सरेण।"

और भी कहा है।

लग्ने क्षीणे शशिनि निधनं रन्ध्रकेन्द्रेशु पापै:

और भी कहा है।

केन्द्रेपु पापेषु निशाकरेण सौम्यग्रहै वीक्षण वर्जितेषु षष्टाष्टमे वा यदि वा शशांके जात शिशु विंशति वर्ष मात्रम्

और भी कहा है।

पापा जन्माष्टमार्गस्थाः सौम्याः केन्द्र वहि स्थिता
अस्मिन योगे समुत्पन्ने त्वष्टा विंशे मृतिर्भवेत्

इत्यादि और भी उदाहरण इस पक्ष की पुष्टि में दिये जा सकते हैं कि केन्द्र गत ग्रहों का प्रभाव सर्वदा अपने से केन्द्र में पड़ने के कारण लग्न पर सदैव रहता है। पाश्चात्य ज्योतिषियों की स्क्वेअर दृष्टि (Square Aspect) कोई नई वस्तु नहीं है। हमारे भारतीय ज्योतिष शास्त्र में इस दृष्टि को माना है जैसा कि आपको उपरोक्त श्लोको से स्पष्ट हो गया होगा। हाँ पाश्चात्य तथा भारतीय दृष्टिकोण मे इतना अन्तर अवश्य है कि पाश्चात्य विद्वान प्रत्येक केन्द्रीय

दृष्टि को बुरा मानते हैं परन्तु हम लोग केवल पाप ग्रहों की केन्द्रीय दृष्टि को हानि प्रद मानते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि अब पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टि कोण धीरे-धीरे बदल रहा है और अब वे भी मानने लग गये हैं कि पापी ग्रहों की केन्द्रीय दृष्टि अनिष्ट फल दायक है शुभ ग्रहों की नहीं।

सूर्याचन्द्रमसौ लग्नमिवेत्याह।

जन्म स्थितिर्जन्मवशाद्धि ज्ञेय
चन्द्राच्च सूर्यात्तन्नायकैश्च।
एवं हि षष्टे मुनिभिर्विचार्यं
विप्रादि जन्मं यमलादि योगम् ॥४६॥

जन्म के साथ ही साथ उत्पन्न हो जाने वाली सब बातों का, तथा जन्म समय की सब बातों का विचार लग्न द्वारा किया जाता है। यह सब विचार "चन्द्र" लग्न तथा "सूर्य" लग्न द्वारा भी किया जाना चाहिये, अर्थात उन राशियों को लग्न मानकर करना चाहिये जिनमें कि सूर्य तथा चन्द्र स्थित हों। इसी प्रकार उन-उन भावों के स्वामियों का भी विचार लग्न सम्बन्धी प्रश्नों के विचारार्थ करना चाहिये। अतः जन्म से मनुष्य ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, वैश्य है अथवा शूद्र अथवा इतर जाति में उत्पन्न हुआ है इन सब बातों का तथा यमल का जन्म अर्थात जोड़े (Twin) का जन्म यह बातें इन्हीं लग्नादिकों द्वारा देखनी चाहिये। तात्पर्य यह कि जाति आदि के विचार में निम्नलिखित बातें देखनी चाहियें, पहली लग्न, दूसरी लग्न का स्वामी, तीसरी सूर्य लग्न, चौथी सूर्य लग्न का स्वामी, पाँचवीं चन्द्र लग्न और छठी चन्द्र लग्न का स्वामी। इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला वृहज्जातक का आगामी श्लोक देखिये।

न लग्नमिन्दुञ्च गुरु निरीक्षते
न वा शशांके रविणा समायुतं
सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशि
परेण जात प्रवदन्ति............

इस श्लोक में "पर" जात (हरामी) होने का योग दिया है, कि जब लग्न तथा चन्द्र पर गुरु की दृष्टि न हो, सूर्य के साथ बैठे हुए चन्द्र को गुरु न देखता हो या चन्द्रमा किसी पाप ग्रह तथा सूर्य दोनों से युक्त हो तो दूसरे से उत्पन्न हुआ समझना चाहिये। यहाँ जिस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना है वह यह है कि पर जात होने का सम्बन्ध चूँकि जन्म से है अतः लग्न का विचार इस विषय में अनिवार्य है।

यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्रकारों ने जब आजीविका के निर्णय के सम्बन्ध में दशम भाव का विचार करना बतलाया तो साथ ही स्पष्ट कह दिया कि वह दशम भाव, लग्न से, सूर्य लग्न से अथवा चन्द्र लग्न से, जो इन तीनों में से बलवान हो उससे लेना चाहिये। सच तो यह है कि प्रत्येक भाव का जो फल लग्न कुन्डली से निकलता है वुही फल सूर्य तथा चन्द्र लग्न की कुण्डलियों से भी निकलना चाहिये। जो कुछ भी हो तीनों लग्नों का प्रयोग हमारे हा करना लिखा है। बृहत पाराशर होरा शास्त्र में जहाँ "सुदर्शन चक्र" का उल्लेख है वहाँ से भी आपको पता चलेगा कि महर्षि पाराशर को, चमत्कारिक फल कहने मे, एक साथ तीनों लग्नों पर विचार करना अथवा तीनों लग्नों को आधार मानकर अन्य भावों पर विचार करना अभिप्रेत था। हमें चाहिये कि हम भी महर्षि का अनुकरण करते हुए प्रत्येक विषय को तीनों लग्नों द्वारा देखने का अभ्यास डाले।

यमल योगमाह।

भावाधिपो गुरुश्चैव यदा षष्ठान हिपश्यति
यमलं जातकं कुरुते ज्येष्टो जायते हि सः ॥५०॥

लाभ स्थान के स्वामी तथा गुरू का दृष्टि आदि प्रभाव जब उपरोक्त ६ पदार्थों पर अर्थात लग्न, लग्नेश, चन्द्र, चन्द्रलग्नेश, सूर्य तथा सूर्यलग्नेश पर पड़ता है तो मनुष्य यमल (Twin) उत्पन्न होता है। गुरू तथा एकादश स्थान चूँकि बड़े भाई के द्योतक हैं अतः जातक को बड़े भाई के रूप में अपने भाई के साथ उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार लग्न, चन्द्रलग्न, सूर्यलग्न तथा उनके स्वामियों पर तृतीयाधिपति तथा मङ्गल (जो कि छोटे भाइयों का कारक है) का प्रभाव हो तो जातक यमलोद्भव (Twin) होता है तथा स्वय छोटा होता है। यहाँ इतना और लिख देना आवश्यक है कि इस योग में यदि बुध भी सम्मिलित हो तो यमल योग पक्का समझा जावेगा क्योंकि बुध का स्वाभाविक गुण है कि वह मिश्रकृत (mixed) वस्तु का द्योतक है। इसी बात को मिथुन राशि के स्वरूप से भी समझा जा सकता है जहाँ कि दो, एक साथ उत्पन्न हुए २ बच्चों को
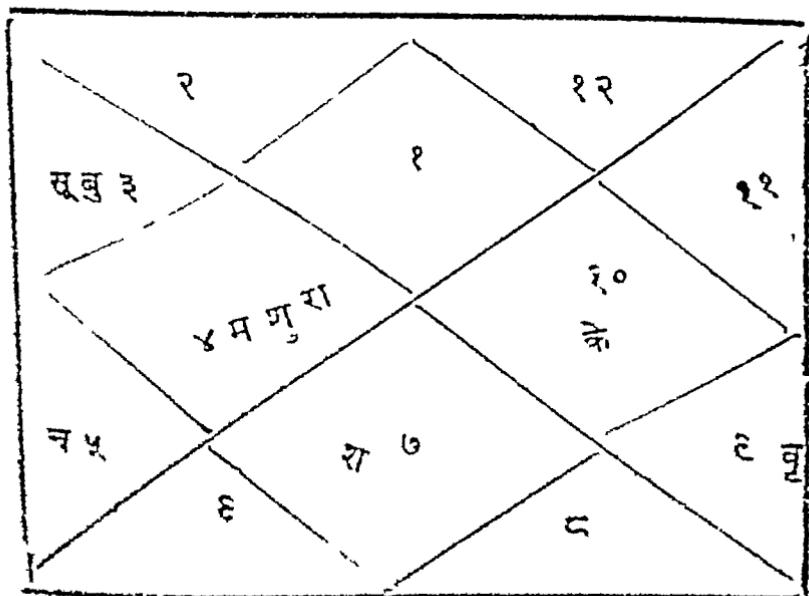
चित्र में एकत्र दिखलाया जाता है। नीचे एक आफिसर की स्त्री की कुन्डली दी जाती है। यह स्त्री यमलोत्पन्न तथा दूसरी बहिन से बड़ी है।

यहाँ गुरू अर्थात बृहस्पति, सूर्यको, सूर्य लग्नधिपति (बुध) को, चन्द्रको, चन्द्र लग्नाधिपति (सूर्य) को तथा लग्न को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। एकादशाधिपति शनि भी लग्न लग्नाधिपति पर पूर्ण दृष्टि डाल रहा है। उधर बुध भी सूर्य के साथ भ्रातृ भाव में स्थित है। और यमल जन्म को दर्शा रहा है।

लग्नाधिपधातुवशाद् व्याधिमाह

लग्नाधिपो जन्मनि पापदृष्टो
हीनो न केनापि ग्रहेणयुक्तः
धातु स्वकीये हि ददाति रोगं
रविर्यथास्थौ चन्द्रश्चरक्ते ॥५१॥

जब लग्नाधिपति निर्बल तथा पाप दृष्ट हो तथा किसी भी ग्रह से युक्त न हो (और शुभ दृष्ट न हो यह भी अभीष्ट है) तो अपनी धातु के विकार द्वारा रोग देता है। जैसे रवि की इस प्रकार की स्थिति अस्थि अर्थात हड्डी में और चन्द्र की ऐसी स्थिति रक्त में रोग को देती है। श्लोक में सूर्य तथा चन्द्र का उदाहरण उपलक्षण मात्र है। अन्य ग्रह भी जब लग्नाधिपति होकर उक्त स्थिति में हों तो अपने अपने धातु के विकार द्वारा रोग को देंगे। जैसे मङ्गल मासपेशियों (Muscles) में, बुद्ध त्वचा में, गुरू मज्जा अर्थात चरबी में, शुक्र वीर्य में तथा शनि और राहु स्नायु (Nerves) में रोग की उत्पत्ति करेंगे।

उदाहरणार्थ पृष्ठ ५५ पर दी गई कुण्डली जो कि एस्ट्रोलाजिकल जर्नल के जनवरी १६५८ अङ्क में प्रकाशित हुई थी देखिये। इ
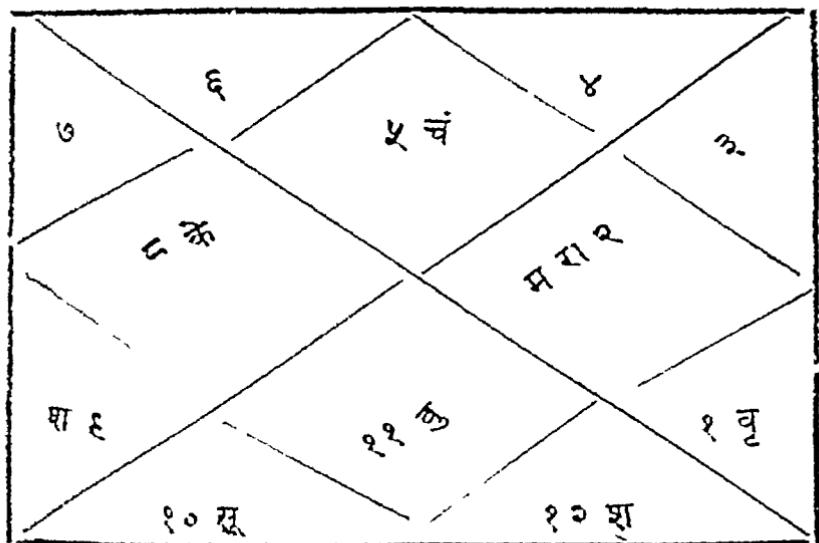
व्यक्ति की हड्डी टूट गई थी। हड्डी का द्योतक सूर्य है। इस कुण्डली में सूर्य्य न केवल लग्नेश ही है बल्कि चन्द्र लग्नाधिपति भी है अतः पूर्ण रूपेण हड्डी का प्रतिनिधि हुआ। अब देखिये सूर्य रोग स्थान में, शनि की राशि में स्थित है अतः हड्डी को हानि पहुँचाना स्पष्टतया दर्शा रहा है। इसी प्रकार यदि लग्नेश होकर अकेला चन्द्र अयुत अदृष्ट होता तो रक्त विकार को दर्शाता, यदि इसी प्रकार मंगल लग्नेश हो और अनिष्ट स्थान में अयुत अदृष्ट हो तो पट्ठों की निर्बलता को प्रकट करता, बुद्ध लग्नेश हो और अनिष्ट स्थान में अयुत अदृष्ट बैठा हो तो चमड़े को रोगों का शिकार बनाता है, गुरू ऐसी स्थिति में चर्बी को सुखाता और उसमें विकार उत्पन्न करता, शुक्र ऐसी ही स्थिति में वीर्य के दोषों को शरीर में ला खड़ा करता तथा शनि ऐसी स्थिति में अर्थात लग्नाधिपति होकर अनिष्ट भाव में स्थित होकर तथा अयुत अदृष्ट होकर नसोंको निर्बल बनाकर अधरङ्ग आदि नाड़ि (Nerves) के रोग देता है।

भाव यह है कि जब कोई ग्रह अनिष्ट स्थान में निर्बल होकर बैठता है तथा शुभ प्रभाव से हीन होता है तो अपनी धातु के प्रकोप से व्याधि निश्चित रूप से देता है विशेषतया जब कि वह ग्रह

लग्नाधिपति भी हो। अन्यथा उसकी अनिष्ट स्थिति निश्चयात्मक फल के देने वाली अनुभवसिद्ध नही हुई है।

लग्नाधिपा निजराश्युपलक्षिताङ्गे व्याधि यच्छतीत्याह।

यदा लग्ने तु लग्नेशः पाप दृष्टया समन्वितः
तदा कष्टं तु वक्तव्यं अंगे लग्नांकदर्शिते ॥५२॥

यदि लग्नेश लग्न में ही विद्यमान हो तथा उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य के उस अग में कष्ट अथवा रोग होता है जो कि लग्न में स्थित राशि द्वारा दर्शित हो। जैसे मेष सिर है, वृषभ मुँह, मिथुन श्वास की नाली तथा कन्धे, कर्क छाती तथा फेफड़े, सिंह पेट, कन्या [ग्र]अतड़िया, तुला जननेन्द्रिय, वृश्चिक अण्डकोष धनु कमर, मकर जानु, कुम्भ जघाए, मीन पॉव यह काल पुरूष के अगों की कल्पना है। अतः स्वक्षेत्री मंगल आदि के लग्न में स्थित होकर पाप दृष्ट होने से सिर, मुँह आदि अगों पर बीमारी तथा कष्ट कहना चाहिये। उदाहरणार्थ निम्नलिखित श्लोक देखिये :

शशिनि विलग्ने कर्किणि कुजार्क दृष्टे तथा कुब्जः
मीनोदय च दृष्टे कुजार्की शनि पुमान भवति पंगु

अर्थात यदि लग्न में स्वक्षेत्री चन्द्र हो तथा मगल और सूर्य से दृष्ट हो तो मनुष्य कुबड़ा होता है। इसी प्रकार मीन लग्न में शनि, मगल सूर्य से दृष्ट हो तो मनुष्य लङ्गड़ा होता है। दोनों योगों में एक ही नियम काम कर रहा है। जब पापी ग्रहों की दृष्टि स्वक्षेत्री, लग्न स्थित चन्द्र पर होगी तो इसका अर्थ होगा कि लग्न में काल पुरुष का चतुर्थ अग (कर्क राशि) आ गया है तथा उस अग एवं उस अग के स्वामी चन्द्र दोनों पर पाप प्रभाव है। अतः चतुर्थ अग

छाती का वक्र (मङ्गल) द्वारा वक्री हो जाना अर्थात टेढ़ा हो जाना युक्ति युक्त ही है। छाती का टेढ़ा होना ही कुबड़ा होना है। इस प्रकार लग्न में बैठने वाली राशि कालपुरुष के जिस अङ्ग को दर्शाती है उस अङ्गका पीड़ित होना सम्भव हो जाता है विशेषतया जब कि उस राशि तथा उसके स्वामी दोनों पर पाप प्रभाव हो। यद्यपि उदाहरण स्वक्षेत्री लग्नेश का दिया है तथापि यदि लग्नेश लग्न में न भी हो और पाप ग्रहों का प्रभाव लग्न तथा लग्नाधिपति दोनों पर हो तो भी लग्न में स्थित राशि द्वारा दर्शित अङ्ग में कष्ट होता है।

दत्तक योगमाह।

षष्टाधिपो यदा पश्येत कुटुम्बं तन्नायकमपि
कुटुम्बाधिपति भवेच्छष्टे कुटुम्बान्यं गच्छेद्ध्रुवम् ॥५३॥

जब षष्ट भाव का स्वामी द्वितीय भाव को तथा उसके स्वामी को देखे तथा द्वितीय भाव का स्वामी षष्ट स्थान मे हो तो मनुष्य अन्य कुटुम्ब में चला जाता है अर्थात किसी द्वारा दत्तक पुत्र के रूप में (मुतबन्ना) ले लिया जाता है। कारण यह कि षष्ट स्थान म्लेच्छ स्थान (foreign to his own) है तथा उसका स्वामी अन्यत्व (foriegnness) का प्रतिनिधि है अतः इनका द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी पर प्रभाव कुटुम्ब को अपना न रखकर दूसरे का बना देता है अर्थात वह व्यक्ति अन्य कुल में चला जाता है। इस विषय का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

कुंडली १ नीरो, रोम के भूतपूर्व बादशाह की है जिसको रोम के सम्राट ने गोद लिया था। यह गोद लिये जाने का योग इस प्रकार बनता है कि शुक्र न केवल षष्ट स्थान का ही स्वामी है अपितु छटे से छटे अर्थात एकादश स्थान का भी स्वामी है। इस प्रकार अन्यत्व दर्शक शु कुटुम्ब स्थान से सम्बन्ध स्थापित किये हुए है।
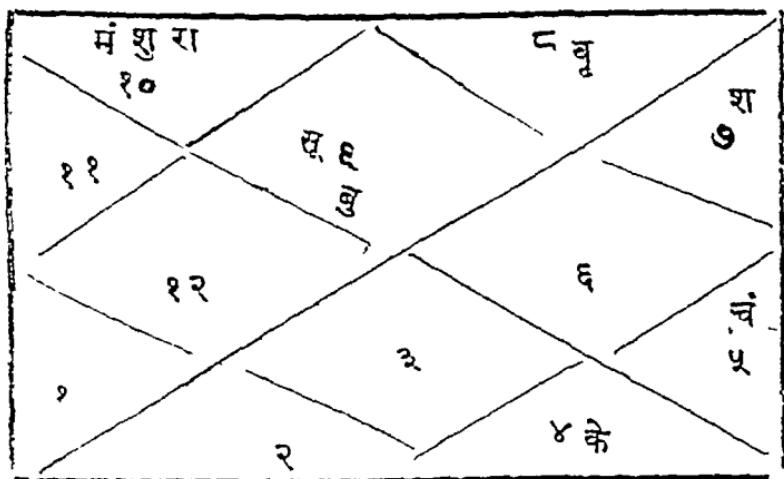
द्वितीयाधिपति शनि भी शुक्र से केन्द्र में तथा छटे से छटे भाव में विद्यमान है, राहु का प्रभाव भी (जो अन्यत्व का द्योतक है) द्वितीय भाव तथा शनि पर है। अतः गोद लिया जाना सिद्ध होता है।

दूसरी कुन्डली एक धनी जैन सज्जन की है जो एस्ट्रोलाजिकल मैगाज़ीन सितम्बर १९५४ में प्रकाशित हुई थी। यह सज्जन भी गोद लिये गये थे। यहाँ भी आप देखेंगे कि छटे भाव का स्वामी शनि

नं० २ :—
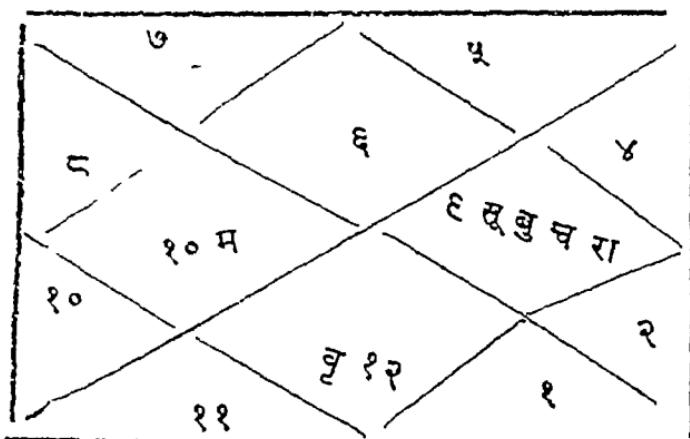
द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी शुक्र दोनों ही को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। अतः कुटुम्ब को अपना नहीं रहने देता बल्कि दूसरे का बनाता है।

इसी विषय को दर्शाने वाली एक और कुन्डली एक वैद्य शास्त्री महोदय की नीचे दी है, आप भी गोद लिये गये। यहाँ कुटुम्ब नं० ३ :—
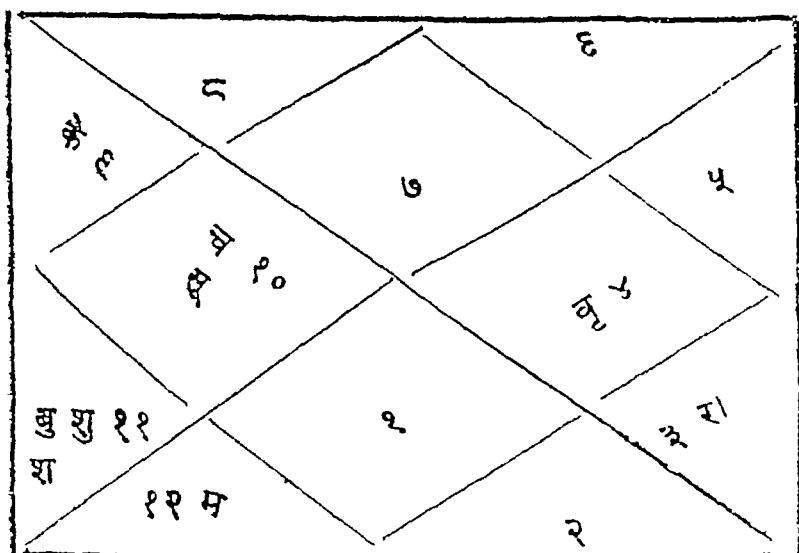
स्थान का स्वामी मगल अन्यत्व दर्शक छटे स्थान में विद्यमान होता हुआ उस घर से सम्बन्ध स्थापित किये हुए है। और षष्ठाधिपति गुरू जो केतु की राशि का स्वामी भी है (अतः अन्यत्व का दर्शक है) न केवल द्वितीय, कुटुम्ब स्थान, पर बल्कि द्वितीयाधिपति पर भी पूर्ण दृष्टि डाल रहा है जिससे अन्य कुटुम्ब में जाना अथवा गोद लिया जाना स्पष्ट है।

कुम्भ लग्नगुरोर्धन इत्यादि विषय प्रतिनिधित्वमाह।

कुंभ लग्ने तुजातस्य द्वादशस्थो गुरुर्यदि।
राहुणा दृष्टोऽथवा युक्तश्चरित्र धन नाशकः ॥५४॥

कुम्भ लग्न में जन्म हो और गुरु द्वादश भाव मे स्थित हो, वहाँ पर राहु से युक्त अथवा दृष्ट हो तो मनुष्य धन तथा चरित्र हीन

होता है। कारण यह है कि गुरु नैसर्गिक रूप से धन कारक ग्रह तो है ही उस पर भी लाभाधिपति तथा धनाधिपति होने के कारण धन विशेष प्रतिनिधि अथवा द्योतक हुआ। ऐसे गुरु को नेष्ट (द्वादश) भाव में नीच राशि का होकर बैठना मनुष्य को धन से वञ्चित रखेगा यह उपयुक्त ही है। गुरु एक आध्यात्मिक ग्रह होने के नाते नैतिकता, तथा चरित्र (Morality) का भी द्योतक है। अतः स्पष्ट है कि गुरु का नीच होना तथा आचार हीन म्लेच्छ राहु से युक्त होना और व्यय अथवा "अति" के भाव में स्थित होना इस बात को दर्शावेगा कि मनुष्य के आचरण में "अति" है तथा वह धर्म की मर्यादाओं का उल्लङघन करने वाला है।

इस प्रकरण में उल्लेखनीय बात यह हैकि द्वादश स्थान "व्यय" का स्थान है। जो ग्रह इस भाव में स्थित होगा वह अपने गुणों का व्यय (Expenditure or waste) दर्शायेगा। उदाहरणार्थ यदि सूर्य द्वादश स्थान में निर्बल हो तथा शनि राहु इत्यादि के प्रभाव में भी हो तो अपनी धातु इत्यादि अर्थात हड्डी का व्यय दर्शावेगा अर्थात हड्डी का खोखला होना, झर जाना, इत्यादि प्रकट करेगा, आँख का कमजोर होना भी प्रकट करेगा। इसी प्रकार चन्द्र द्वादश स्थान में शनि राहु इत्यादि अपव्यय द्योतक ग्रहों से युक्त तथा दृष्ट होकर रक्त स्राव को दर्शावेगा, आँख की निर्बलता को भी दिखलावेगा तथा मन के व्यय को अथवा अपस्मार रोग-वत लक्षणों को दिखलावेगा। इस प्रकार मङ्गल पट्ठों के सूखने को बुद्ध चमड़े के घिसने को, गुरू चरबी के पिघलने को, शुक्र ज्यादा भोगविलास द्वारा वीर्य के नाश तथा अधिक आँख के प्रयोग, जैसे बहुत पढना इत्यादि, को बतावेगा। शनि भी इसी प्रकार मानसिक तनाव द्वारा नस नाड़ि के अधिक प्रयोग को दिखायेगा। साराश यह कि प्रत्येक गुण की "अति" तथा "अपव्यय" होगा।

शनेश्चतुर्थ भावे दृष्टि फलमाह।

चतुर्थं क्षेत्र स्थानं स्याच्छनिस्तुक्षेत्रकारकः
तस्माच्छनेर्दृग्योगश्चतुर्थ क्षेत्रदस्स्मृतः ॥ ५५ ॥

चतुर्थ भाव भूमि, जायदाद, घर इत्यादि का द्योतक है, शनि क्षेत्र कारक है। इसीलिये जब शनि का योग अथवा दृष्टि सबन्ध चतुर्थ भाव से हो, तो जहाँ तक क्षेत्र प्राप्ति के प्रश्न का सम्बन्ध है यह दृष्टि अथवा योग बुरा नहीं समझना चाहिये। बल्कि इस योग वालों को क्षेत्र आदि की प्राप्ति होती है ऐसा समझना चाहिये कारक का निज भाव से योग इष्टफल के देने वाला होता है, ऐसा ही मानना चाहिये। जैसे बुद्ध विद्या का कारक है पचम विद्या का भाव, बुध का पञ्चम में बैठना विद्या देगा ऐसा समझना परन्तु बुध पर पाप दृष्टि नहीं होनी चाहिये। इसी नियमानुसार शनि, जो आयुष्य कारक है जब अष्टम स्थान को देखता है या अष्टम में अच्छी स्थिति में बैठता है तो आयु की वृद्धि करता है।

इस सम्बन्ध में देखिये कुन्डली जार्ज बर्नर्ड शा जिन्होंने लगभग ९४ वर्ष की आयु पाई थी। इस प्रकार शनि की दृष्टि चतुर्थ
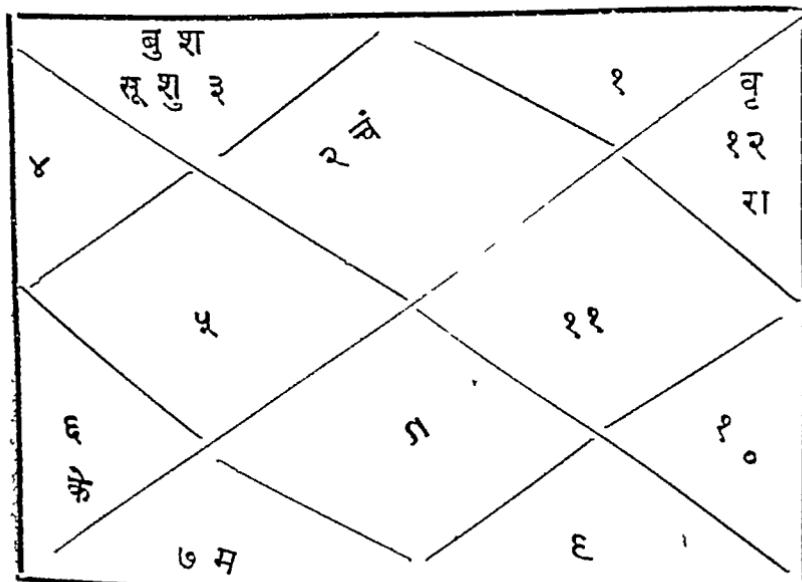
भाव पर होते हुए भी उस भाव की हानि नहीं कर सकती, क्योंकि शनि उस भाव का कारक है।

साधारणतया शनि की दृष्टि हानि करती है परन्तु जब शनि किन्ही विशेष भावों का स्वामी होने के कारण विशिष्ट गुणों से सम्पन्न हो जाता है तो उसकी दृष्टि उस भाव पर, अथवा उस ग्रह पर जो उन्हीं गुणों का प्रतिनिधि अथवा प्रतीक हो, हानि न देकर उल्टा लाभ ही करती है। उदाहरणार्थ जब शनि योग कारक ग्रह बन जाता है, जैसा कि वृषभ तथा तुला लग्न वालों के लिये केन्द्र तथा त्रिकोण के आधिपत्य से हो जाता है, तो शनि इतना शुभ हो जाता है कि उसकी दृष्टि "राज्य द्योतक सूर्य पर पड़ने से राज्य में बाधा की बजाय राज्य प्राप्ति में उल्टी सहायक होती है।' निष्कर्ष यह कि जब दो ऐसे अगों (factors) का परस्पर प्रभाव पड़ता है जो कि एक ही तथ्य के द्योतक हों तो तथ्य की अनुकूलता के कारण तथ्य की बातों में वह परस्पर सहायक के रूप में कार्य करेंगे चाहे वे परस्पर नैसर्गिक शत्रु तथा पापी ही क्यों न हों।

हम अपने कथन की पुष्टि ऐसी व्यक्तियों की कुन्डलियों द्वारा करना चाहते हैं जिन्होंने बहुत समय तक राज्य किया है। पहली कुन्डली रानी विक्टोरिया की दी जाती है जिनका दीर्घ कालीन तथा सफल
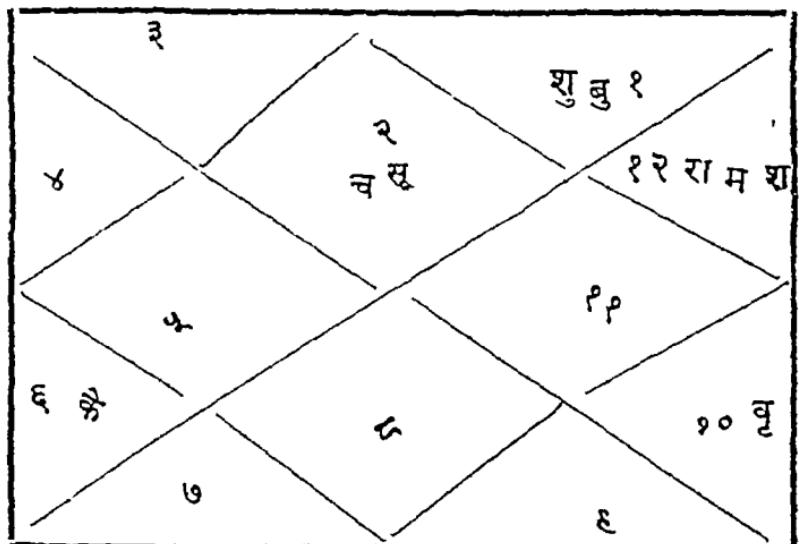
राज्य जगत विख्यात है। यदि शनि की दृष्टि वृषभ लग्न वालों के सूर्य आदि शुभ ग्रहों के लिये हानिप्रद होती तो यहा वह दृष्टि लग्न, सूर्य, चन्द्र सब पर पड रही है फिर कैसे सम्भव था कि विकटोरिया महारानी को एक महान साम्राज्य की प्राप्ति होती और यदि हो भी गई थी तो इतने दीर्घ काल तक वह शासन सत्ता कैसे बनी रही। मानना पड़ेगा कि चतुर्थाधिपति शुभ राज्य कारक सूर्य पर राज्य योग कारक शनि की दृष्टि अनिष्ट कर नहीं हो सकती।

दूसरी कुन्डली हिटलर की है। यहाँ भी राज्यकारक सूर्य प्रबल उपचय एकादश स्थान का स्वामी होता हुआ राज्य का
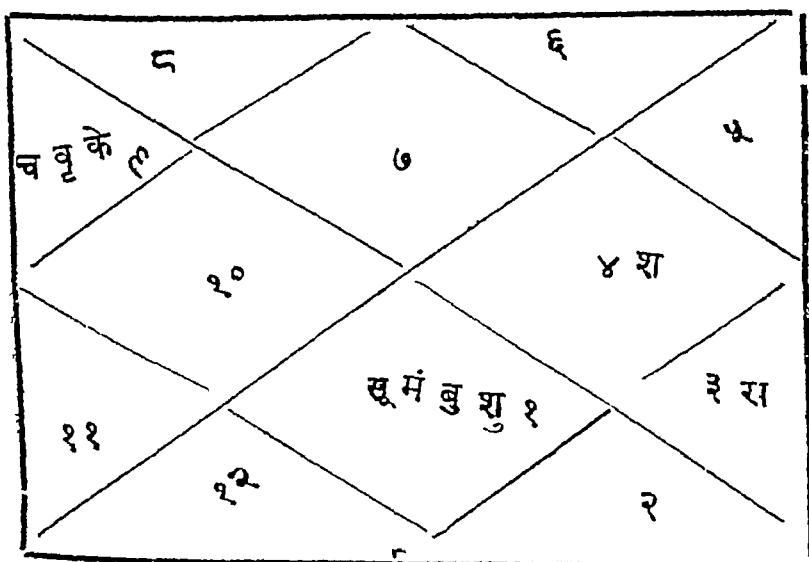
प्रबल प्रतीक हैं—यदि मंगल और शनि सूर्य के सहायक न माने जायें तो हिटलर को राज्य की प्राप्ति न होनी चाहिये थी, क्योंकि पापी मंगल का योग तथा प्रबल पापी केन्द्रस्थ शनि की दृष्टि अवश्य हानि कारक थी। परन्तु नहीं मंगल द्वितीय (शासन) स्थान का स्वामी है तथा शनि राज योग कारक है, अतः इनकी युति तथा दृष्टि हानि प्रद न होकर लाभप्रद्र सिद्ध हुई है।

तीसरी कुन्डली निज़ाम हैदराबाद की लीजिए यहा भी शनि तथा मगल की पूर्ण दृष्टि लाभाधिपति सूर्य पर पड़ रही है। यदि शनि तथा
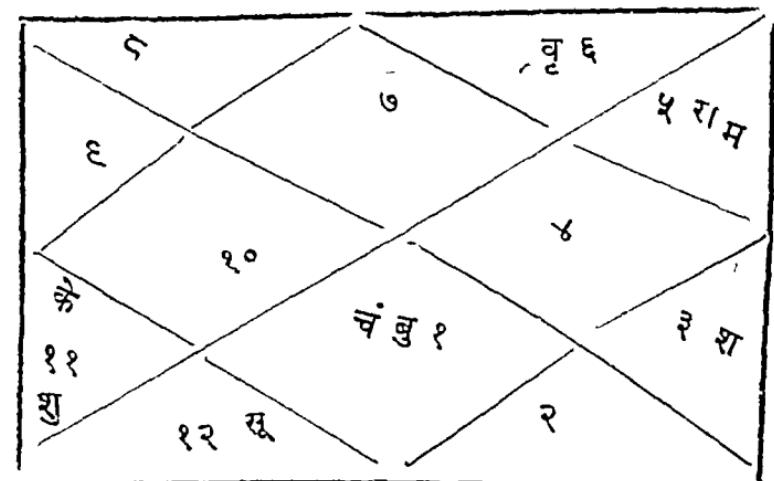
मगल को इस कुन्डली के लिये पापी माना जाये तो राज्य करना तो दूर रहा, राज्य की प्राप्ति सिद्ध करना भी कठिन हो जाता है। अतः मानना पड़ेगा कि मंगल शासन (द्वितीय) स्थान का स्वामी होने से तथा सप्तम (दशम से दशम) स्थान का स्वामी होने से शासन द्योतक ग्रह है। इसी प्रकार शनि भी केन्द्र त्रिकोण का स्वामी होने के कारण राज्यदायक है। ऐसे राज्यदायक (यद्यपि पापी) ग्रहों की दृष्टि रािज्यदायक ग्रहों पर हानि प्रद नहीं हो सकती।

चौथी कुन्डली रूस के भूत पूर्व शासक स्टालिन की है जिसने रूस पर निजतन्त्रता पूर्वक कई वर्षों तक राज्य किया।
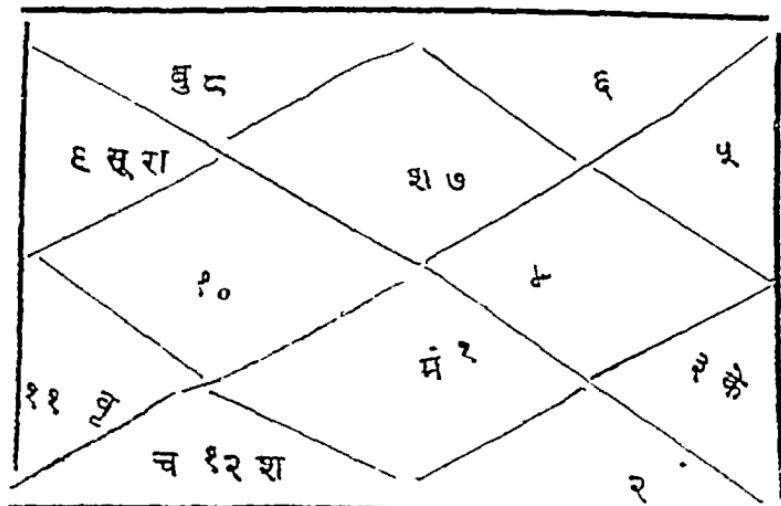
यहाँ भी गुरू की राशि मे छठे स्थान में ठहरे हुए प्रबल शनि की दृष्टि सूर्य पर पड़ रही है। यदि शनि अपने नैसर्गिक स्वभाव अर्थात असफलता (Frustration) इत्यादि का फल देता तो सूर्य पर उसकी यह प्रबल दृष्टि कदापि राज्य न दिला सकती। अतः यह सिद्ध हुआ कि नैसर्गिक पापी ग्रह भी यदि महर्षि पाराशर के नियमों के अनुसार केन्द्र तथा त्रिकोण का आधिपत्य प्राप्त करने के कारण "राजयोग कारक" की पदवी पा जावें तो उनकी दृष्टि हानिकारक नहीं रहती, विशेषतया जब कि यह दृष्टि किसी अन्य राज्यदायक ग्रह पर पड़ रही हो।

कालपुरुषांगाद्रोग विशेषमाह।

लग्नादि भावा मूर्द्धादि अंगा
मेषादि ऋक्षाणि तथैव सन्ति।
तयोर्हि पापेऽथ नायकौ च
दृग योग जातेऽगविशेषनाशम् ॥५६॥

जिस प्रकार मेषादि राशियाँ काल पुरुष के शिर आदि अङ्गों को दर्शाती हैं, इसी प्रकार लग्नादि भाव भी मनुष्य के शिर आदि अवयवों को दर्शाते हैं। यदि एक ही संख्या वाले भाव तथा राशि पर पाप प्रभाव हो तथा उन दोनों के स्वामी भी पाप ग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हों तो मनुष्य का वह अङ्ग जो काल पुरुष दर्शाता है रोगादि व्यथा को प्राप्त होता है।

अत्रोदाहरणमाह।

यथा हिकस्मिंश्चिल्लग्न जाते
चतुर्थ भावेऽपि च तन्नायके च।
चन्द्रे तथैवापि च कर्क राशौ
दृग योग पापै हृदये हि रोगः ॥५७॥

जैसे किसी भी लग्न में मनुष्य का जन्म हो, यदि चतुर्थ भाव तथा उसका स्वामी चार सख्या की राशि अर्थात कर्क तथा उसका स्वामी (अर्थात चन्द्र) यह चारों के चारों पाप युक्त तथा पापा दृष्ट हों तो मनुष्य को छाती के रोग जैसे न्यूमोनिया, क्षय, इत्यादि होते हैं। (मेषादि राशियाँ किन-किन अङ्गों की प्रतिनिधि हैं इसक विवरण श्लोक सख्या ५२ में देखिये) इसी प्रकार भावों में प्रथम भाव से शिर, द्वितीय से मुँह तृतीय से साँस की नाली तथा कन्धे, चतुर्थ से छाती, पञ्चम से पेट, छटे से अतड़िया, सप्तम से गुप्त इन्द्रिय, अष्टम से वृषण (Testicles), नवम से कमर (hips) दशम से जानु, एकादश से जघा तथा द्वादश से पाव का विचार करना। जैसे पञ्चम राशि (सिंह) पञ्चम भाव, तथा इनके स्वामी अर्थात सूर्य तथा पञ्चमेश इन सब पर पाप दृष्टि अथवा पाप योग हो तो पेट रोगी समझना। अन्य अगों के लिये भी इस नियम को लगा लेना। उपरोक्त "काल पुरुष" के अङ्गों का प्रयोग सुविधा से किसी भी लग्न की कुण्डली में उस संबन्धी विशेष के विषय में किया जा सकता है जिसके लग्न में मेष राशि स्थित हो क्योंकि ऐसी स्थिति में भाव सख्या तथा राशि संख्या की एकात्मता (Identity) के कारण शुभाशुभ फलों का प्रभाव शीघ्र अनुभव में आता है। जैसे तुला लग्न हो, चन्द्र दशम् स्थान में हो, शनि अष्टम में हों, तथा मङ्गल तृतीय भाव में हो तो ऐसी स्थिति में कुन्डली वाले की स्त्री को छाती के रोगों के होने की प्रबल सम्भावना होगी क्योंकि सप्तम भाव से चतुर्थ (छाती) भाव में चतुर्थ ही राशि है तथा चन्द्र भी वहीं है अतः स्त्री की छाती दर्शक चारों के चारो अङ्ग (Factors) मङ्गल तथा शनि द्वारा दृष्ट होने से छाती मे क्षय (T.B.) इत्यादि दे सकते हैं

इस प्रकरण में हम क्रियात्मक जीवन से कुच्छ एक कुण्डलियाँ देकर यह दर्शाने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकार "काल पुरुष" के विशेष अङ्ग के पाप प्रभाव से पीड़ित होने पर मनुष्य के उसी अङ्ग पर रोग

चोट, आदि की उत्पत्ति होती है। पहली कुण्डली एक युवक की है जिसको दमे का रोग है। दमे की बीमारी में काल पुरुष के तृतीय
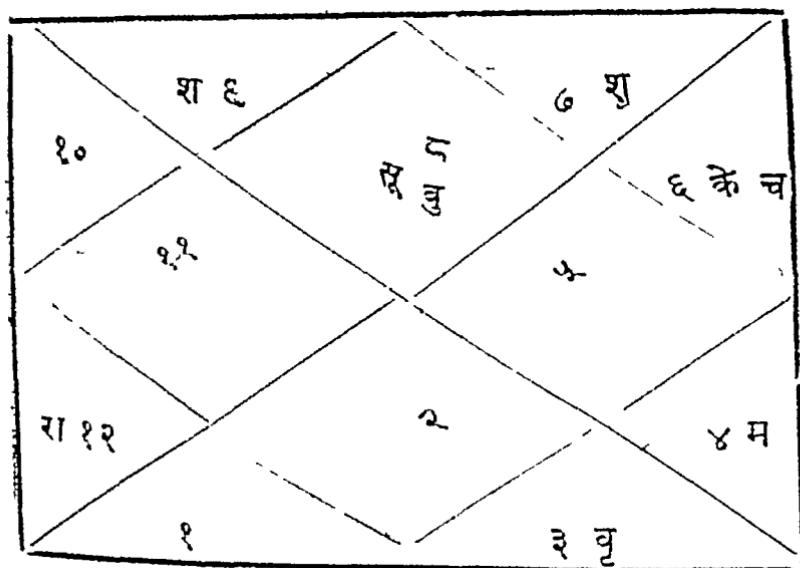
अङ्ग का पीड़ित होना आवश्यक है, इसी प्रकार चन्द्र भी दीर्घ रोग प्रद ग्रहों अर्थात शनि एवं राहु द्वारा पीड़ित होना चाहिये। इस कुण्डली में दोनों शर्तें पूरी होती हैं। तृतीय (मिथुन) राशि पर शनि की दृष्टि है तथा राहु केतु का केन्द्रीय प्रभाव है। गुरु भी राहु की राशि का स्वामी होने से मिथुन के लिये हानि प्रद होगा। फिर "स्थान हानि करो जीवः स्थान वृद्धि करो शनि" के सिद्धान्तानुसार भी गुरु मिथुन को हानि पहुँचावेगा। तृतीय राशि का स्वामी बुध पापी सूर्य के साथ है तथा बुध की एक ओर शनि का प्रभाव है दूसरी ओर मङ्गल की दृष्टि, अतः बुध पाप प्रभाव में है। तृतीय भाव पर मंगल की दृष्टि है। तृतीय स्थानाधिपति शनि पर राहु केतु का केन्द्रीय प्रभाव है। अतः तीन अंक की राशि उसका स्वामी, तृतीय भाव तथा उसका स्वामी सभी पाप प्रभाव में पाये गये। उधर चन्द्र भी राहु केतु से प्रभावित तथा शनि से दृष्ट है। अतः दमे की बीमारी उत्पन्न हुई।

दूसरी कुन्डली एक ऐसे सज्जन की है जिनके पेट मे छुरा घोंपा गया परन्तु वह दैववश बच गये।
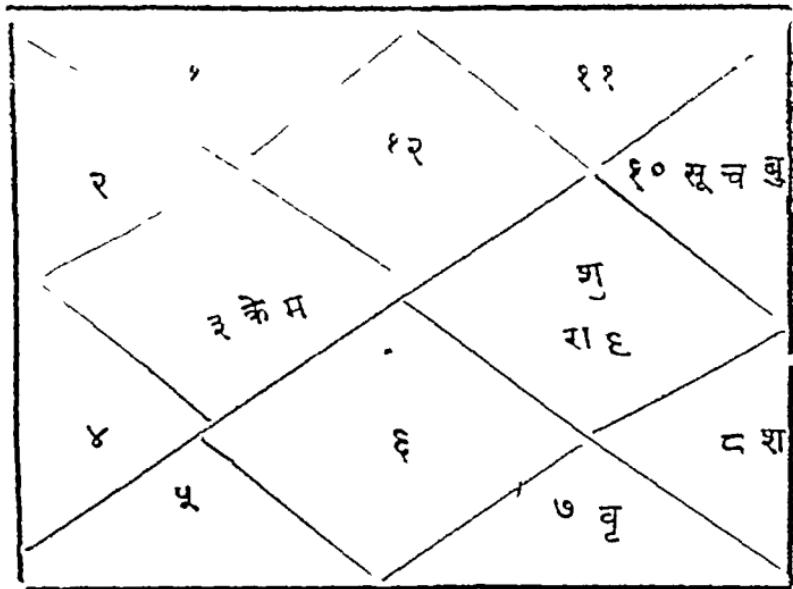
क्रमाकानुसार पेट का पाचवा स्थान है तथा पाञ्च नम्बर (सिह) राशि पर शनि की दृष्टि है। उसके स्वामी सूर्य पर शनि मङ्गल दोनो की दृष्टि है, पाञ्च नम्बर घर पर सूर्य इत्यादि पापो ग्रहों की दृष्टि है तथा पञ्च भाव का स्वामी चन्द्र पक्ष बल में हीन होकर मङ्गल तथा शनि दोनों द्वारा दृष्ट है, अतः काल पुरुष का पाचवॉ अङ्ग, राशि, तथा भाव दोनों ही रूपों मे पीड़ित पाया गया है जिसके फल-स्वरूप पेट पर प्रहार होना स्वाभाविक था। शनि चूँकि लोहा है तथा सूर्य चन्द्र आदि की युति क्षत स्थान (छटे से छटे) मे हुई है अतः लोहे के शस्त्र से प्रहार हुआ।

तीसरी कुण्डली एक ऐसे सज्जन की है जिनको वर्षों ब्लेडर (Bladder) (पेशाब के थैले) में कष्ट रहा।
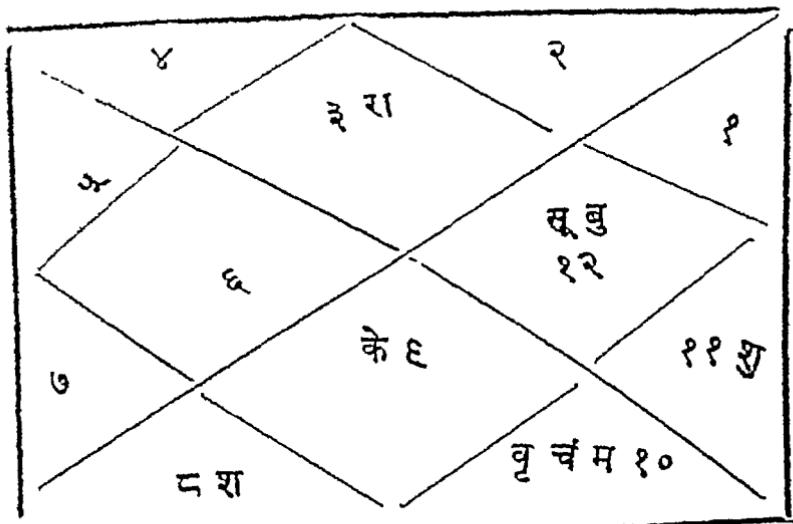
काल पुरुष का सात नम्बर का अङ्ग देखिये सात नम्बर राशि पर मङ्गल का केन्द्रीय प्रभाव है। उसका स्वामी शुक्र अपने शत्रु एवं पापी सूर्य तथा मङ्गल द्वारा घिरा हुआ है, सात नम्बर भाव में केतु विद्यमान है तथा यह भाव शनि मगल से घिरा भी हुआ है और सात नम्बर घर का स्वामी गुरु नीच राशि का होकर अष्टम स्थान मे मंगल युक्त तथा शनि दृष्ट है। अतः काल पुरुष के सात नम्बर अग के पीड़ित होने के कारण पेशाब की उक्त पीड़ा हुई।

चौथी कुण्डली एक ऐसे सज्जन की है जिनको जङ्घा के उच्चतम भाग में आपरेशन करवाना पड़ा था। यहाँ काल पुरुष की अंग संख्या ६ देखिये। नौ नम्बर राशि तथा नौ नम्बर घर दोनों का स्वामी गुरु है वह गुरु षष्ट स्थान में शनि तथा राहु के साथ पड़ा हुआ है। नौ नम्बर राशि तथा भाव पर भी शनि तथा राहु का
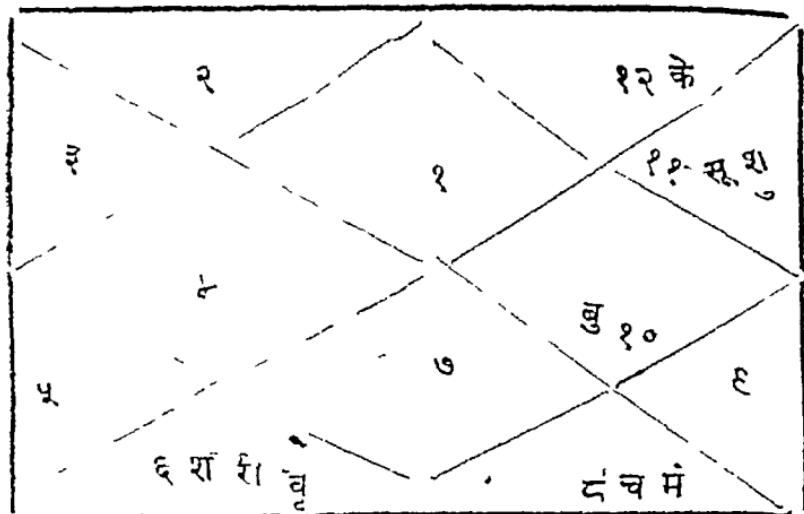
केन्द्रीय प्रभाव है। यही कारण था कि ६ नम्बर के स्थान पर आपरेशन करवाना पड़ा। शनि राहु लोहा है, दृष्ट स्थान क्षत स्थान है ही, अतः आपरेशन सिद्ध है ।

पांचवीं कुण्डली एक ऐसे सज्जन की है जिनकी धर्मपत्नी को एपेन्डीसाइटस (Appendicites) का रोग है।
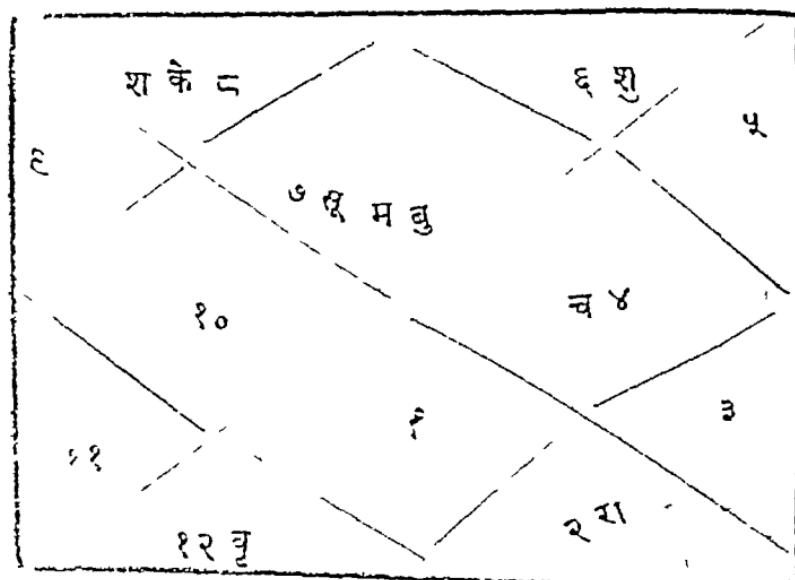
यहाँ स्त्री का पंचम अंग देखना चाहिये अर्थात सप्तम भाव से पंचम भाव पर विचार करना चाहिये। सप्तम से पंचम भाव का स्वामी सूर्य है जो कि नीच राशि को प्राप्त हो चुका है और मंगल के साथ पड़ा है, सिंह राशि पर शनि की दृष्टि भी है तथा शुक्र, शनि दो परम शत्रु ग्रहों से घिरा हुआ भी है। अतः स्त्री के भाव से पंचम अंग प्रबल पाप प्रभाव में तथा निर्बल पाया गया। फल स्वरूप स्त्री को ग्रन्थि का रोग होना ज्योतिष सम्मत सिद्ध हुआ।

छटी कुण्डली एक महिला की है जिनको मध्य आयु के अनन्तर क्षय रोग (T. B. of Lungs) हो गया।
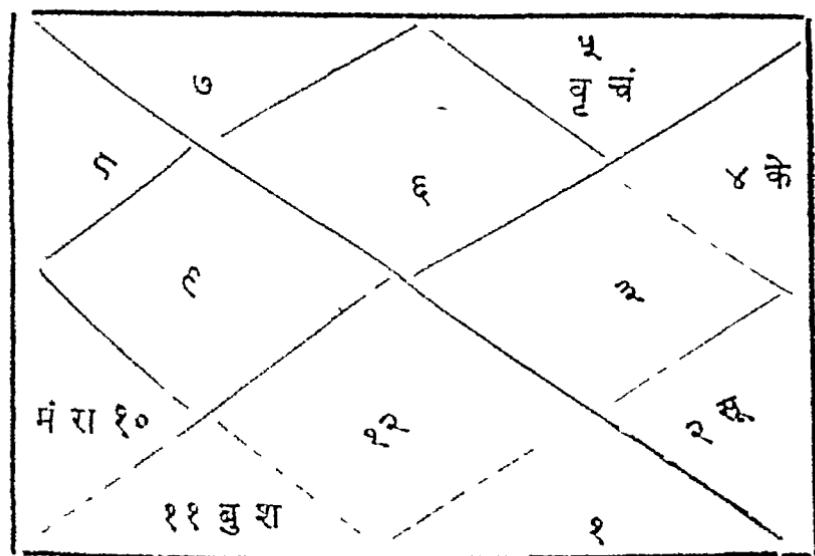
यहाँ काल पुरुष का चतुर्थ अंग विचारणीय है। देखिये चार नम्बर राशि पर मंगल तथा राहु की दृष्टि है। तथा उसका स्वामी चन्द्र, रोग स्थानाधिपति तथा रोग कारक शनि द्वारा एवं मंगल द्वारा दृष्ट है। इसी प्रकार चतुर्थ भाव के आस पास सूर्य शनि तथा मंगल का प्रभाव है तथा चतुर्थेश गुरु भी रोग दायक शनि द्वारा अतीव पीड़ित है अतः शरीर के चार नम्बर अंग अर्थात छाती में दीर्घ रोग का होना स्पष्टतया सिद्ध हुआ।

सातवीं कुण्डली एक ऐसे सज्जन की है जिनकी बड़ी बहिन को यकृत (जिगर) में कैन्सर (Cancer) का भयानक रोग है। देखिये
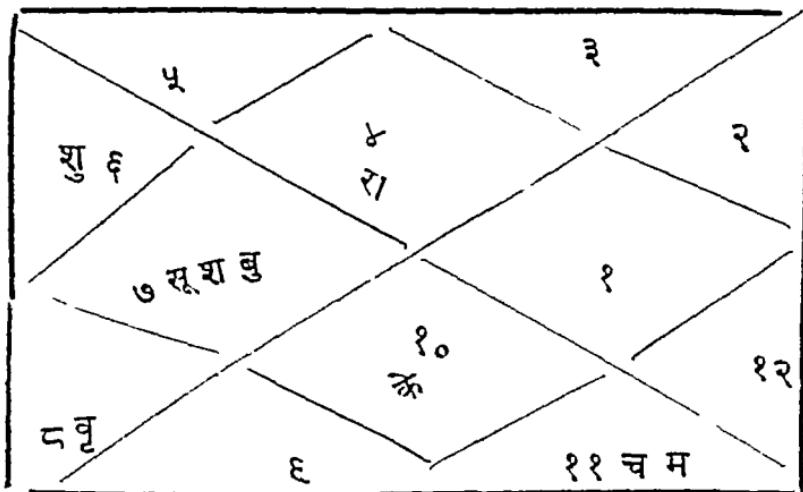
बड़ी बहिन का विचार एकादश भाव से किया जाताहै। एकादश स्थान जो बड़ी बहिन के शरीर का द्योतक है उस से पचम स्थान में स्थित होकर मानों उनके मरण हेतु की स्थिति को बहिन के पचम भाव में बतला रहा है। शुक्र वहाँ नीच भी है यह उपरोक्त भय की पुष्टि करता है। उसी स्थान पर एक प्रबल मङ्गल की दृष्टि भी है। पुनः बहिन के पचम स्थान का स्वामी बुध भी बहिन के रोग स्थान में जा पहुँचा है मानों रोग को बुला रहा है बल्कि बहिन के पंचम तथा छठे स्थानों के स्वामियों का परस्पर स्थान परिवर्तन पचम भाव की पीड़ा को भली भाँति प्रकट कर रहा है। बुध न केवल बहिन के छठे स्थान में है बल्कि रोग कारक शनि (जो कि केतु की राशि का स्वामी होने से और भी भयानक हो गया है तथा उच्च होने से अतीव बलवान है) के साथ है राहु बुध से केन्द्र में है अतः बहिन के पच भाव का दीर्घ कालीन असाध्य रोग से पीडित होना ज्योतिष शास्त्र से सिद्ध है।

कारके रोगमाह।

यत्कारको ऽर्कसुतेन युक्तो
षष्टागतो राहु समन्वितश्च
रोगञ्च तस्य प्रलं प्रदिष्टं
पुत्रस्यरोगं गुरुणा यथाहि ॥५८॥

जिस भाव का कारक ग्रह शनि तथा राहु के साथ षष्ट भाव में स्थित हो उस भावदर्शित सम्बन्धी को दीर्घ रोग होता है। जैसे कोई भी लग्न हो, यदि गुरु, शनि तथा राहु के साथ, शष्ट भाव में स्थित हो तो कुण्डली वाले का पुत्र किसी असाध्य रोग से पीड़ित तथा दीर्घ रोगी होगा। यदि गुरु पचमाधिपति भी हो जैसा कि सिंह तथा वृश्चिक लग्न वालों के लिये होता है, तो फिर और भी निश्चय से पुत्र का दीर्घ रोग द्वारा पीड़ित होना कहा जा सकता है। जब ऐसा योग हो तो पुत्र को क्या रोग है इस बात का निर्णय पचम, भाव को लग्न मान कर तथा काल पुरुष के अगो की अत्यन्त निर्बलता के स्थान को उपरोक्त नियमों द्वारा निश्चित करके, हो सकता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित कुण्डली देखिये:—
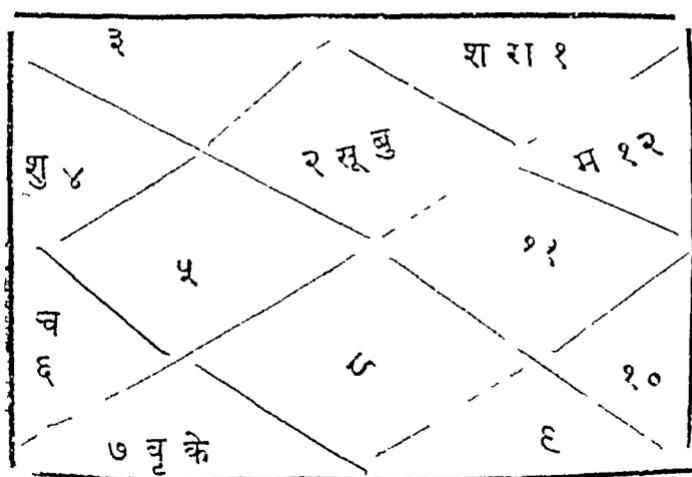
यहाँ पुत्र कारक गुरू षष्ट स्थान में पड़ा है, तथा शनि एव राहु से दृष्ट है। इसी कारणवश इस व्यक्ति का लड़का बचपन से ही रोग से पीड़ित है। लड़के को फेफड़े मे छिद्र का रोग है। इस रोग का सूचक भी गुरु है क्योंकि पचम स्थान अर्थात पुत्रभाव से चतुर्थ स्थान (फेफड़े) का स्वामी गुरु, शनि राहु तथा मगल तीनों पाप ग्रहों से दृष्ट होने के कारण, पुत्र को उसके चतुर्थ भाग (अर्थात् फेफड़े मे) कष्ट दे रहा है।

एक और कुण्डली इसी सबन्ध मे देखिये, इस व्यक्ति का इकलौता पुत्र बचपन ही मे जघाओं के असाध्य रोग से पीड़ित है। पहिले तो आप देखेंगे कि गुरु, पुत्रकारक रूप से रोग स्थान मे रोगकारक शनि तथा राहु के साथ स्थित होकर, पुत्र को कष्ट बतला रहा है। उधर
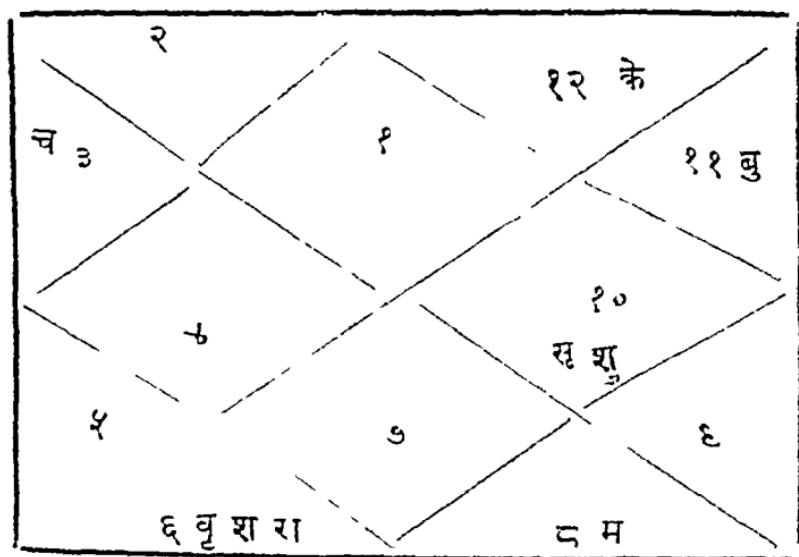
पचम स्थान से एकादश स्थान पर मगल तथा शनि दोनों की दृष्टि है। उस स्थान का स्वामी बुध, सूर्य केतु से घिरा हुआ है तथा मगल से दृष्ट है। अतः जघाओं के कष्ट को पुत्र मे बतला रहा है।

अत्रकारण माह ।

सूर्यात्मजस्तथाराहुरुक्तौ मन्द चारिणौ
रोगञ्च यदा संकुरुतो दैर्घ्यं तस्य लक्षणम ॥५६॥

शनि तथा राहु दोनो ही ग्रह मन्द गति तथा दीर्घकार वाले हैं लक्षण शास्त्र (Science of sym bololgy) के अनुसार जब यह ग्रह रोग को लाते हैं तो वहरोग अधिक समय तक रहने वाला होता है

उदाहरणार्थ देखिए निम्नलिखित कुन्डली। यहाँ छटे स्थान में राहु स्थित है। अतः षष्टाधिपति कोई भी ग्रह हो, राहु के अशुभ फल को
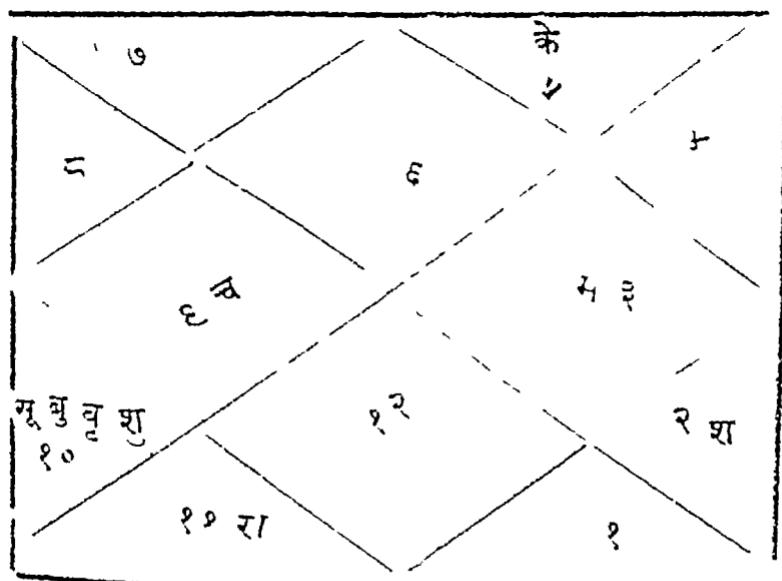
साथ लिये रहेगा। यहाँ तो स्वय रोग कारक शनि ही षष्टाधिपति है। अतः शनि तीन प्रकार से रोगदायक ग्रह सिद्ध हुआ। स्पष्ट है

कि ऐसे शनि का प्रभाव जिस भाव पर पड़ेगा उसको रोग की प्राप्ति अवश्य होगी इस कुन्डली मे चूँकि शनि नवम स्थान में है अतः इस व्यक्ति की कमर (Hips) में गत २५ वर्षों से दीर्घ तथा असाध्य रोग है। शनि की दृष्टि तृतीय भाव पर भी है। अतः इस व्यक्ति को दाँए कान का भयानक आपरेशन (चीर काट) दो बार करवाना पड़ा। शनि एकादश स्थान को भी देख रहा है पर चूँकि वहाँ तीन शुभ ग्रहों की भी दृष्टि है अतः कष्ट बाँए कान में न होकर दाँए कान में ही हुआ।

मातृ रोगमाह उदाहरणेन।

> नक्र लग्ने तु जातानां चतुर्थे यदि सोमजः
> षष्टाधिपो भवेल्लग्नाच्चतुर्थादपि भवेद्ध्रुवम ॥
> कारणादस्मातोक्त ज्ञेयो बुधो मातुश्च रोगदः
> तस्या रोगं सुदीर्घं स्याद्भौमे षष्टेऽगु सयुते ॥६०॥

यदि मकर लग्न मे जन्म हो और बुध चतुर्थ स्थान में अर्थात मेष राषि मे स्थित हो तो ऐसी स्थिति मे बुध चूँकि लग्न से छटे स्थान का स्वामी बनता है और चतुर्थ भाव अर्थात माता के भाव से भी षष्टाधिपति होता है इस कारण उस व्यक्ति की माता के लिये यह योग विशेष रोग देने वाला हो जाता है। यह योग और भी प्रबल हो जाता है जब कि षष्ट स्थान अर्थात मिथुन राशि में मङ्गल राहु के साथ स्थित हो। चूँकि मङ्गल मकर लग्न वालों के लिये चतुर्थ (माता) भाव का स्वामी है, अतः उसका षष्ट भाव में, शत्रु राशि में, रोग कारक राहु के साथ बैठना माता के लिये विशेष कष्ट प्रद होगा। यह स्पष्टतया युक्ति युक्त ही है।

मरण हेतु विषये लग्नस्य प्रयोगमाह ।

यद्यदेवायुषस्स्थान मृत्योरपि तद्तदेव हि
अतएव कारणं मृत्यो र्लग्नान्निधनाच्च चिन्तयेत ॥६१॥

जो भाव आयु का माना है वुही भाव मृत्यु का भी समझना चाहिए क्योंकि आयु का अभाव ही "मृत्यु" है। इसीलिये अमुक मनुष्य की मृत्यु किस कारणवश होगी इस बात का निर्णय न केवल अष्टम भाव से परन्तु अष्टम् तथा लग्न दोनों से करना चाहिए।

इस प्रकरण में देखिए कुण्डली श्री सुभाष चन्द्र बोस :—शनि एक
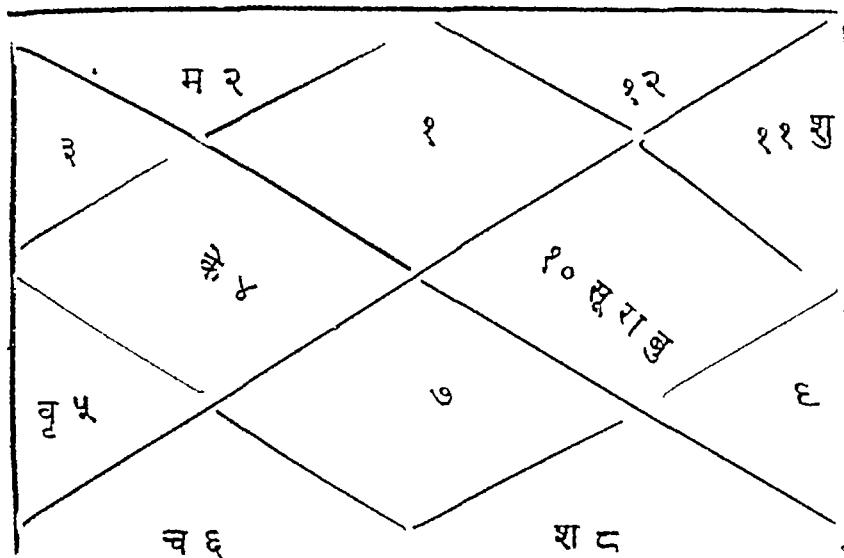
तो अष्टम स्थान मे स्थित है दूसरे अष्टमेश को देख रहा है तीसरे इसकी दृष्टि लग्नाधिपति पर भी है। अतः चार मे से तीन अङ्गों (factors) पर शनि का प्रभाव है। इतना अधिक प्रभाव और किसी ग्रह का मरण द्योतक अंगो (factors) पर नहीं है अतः शनि ही मरण के प्रकार को दर्शाता है। यह शनि (लोहा) उच्च स्थान (Zenith) अर्थात् दशम् का स्वामी होने से ऊँचाई को मरण का हेतु बता रहा

है। दूसरे एकादश स्थान का स्वामी होने से बहुमूल्यवान वाहन (जिसका विचार एकादश भाव से किया जाता है।) का स्वामी होने से वाहन को भी मरण का हेतु बता रहा है। चूँकि उच्च स्थान (दशम) पर शनि राहु तथा सूर्य का प्रभाव है अतः ऊँचाई से गिरना (पृथक होना) भी दृष्टि गोचर हो रहा है। इस प्रकार ऊँचाई से विमान द्वारा गिरकर मरण को शनि दर्शाता है। लग्न का विचार "मरण हेतु" के निधारित करने में आवश्यक है, इस बात का प्रमाण सर्वार्थचिन्तामणि के निम्नलिखित श्लोक में देखिए।

आयुर्विलग्नाधिपति बलेन हीनौ धरासूनु व्रणेश
युक्तौ युद्धे मृतिस्तस्य वदन्ति तद्ज्ञाः ....

अर्थात् जब अष्टम तथा लग्न स्थान के स्वामी निर्बल होकर षष्टेश तथा मंगल से युक्त हों तो वह मनुष्य युद्ध में मृत्यु को पाता है यहाँ लग्नाधिपति का स्पष्ट वर्णन है। इसी प्रकार लिखा है:—

रवे शशाङ्के नवमस्थिते तु
जले मृतिस्तस्य पितुश्चवाच्या

कि जब सूर्य तथा चन्द्र नवम भाव में स्थित हों तो पिता की मृत्यु जल में हो। यहाँ भी नवम भाव अर्थात पिता का लग्न भाव मृत्यु के कारण देखने में स्पष्टतया प्रयुक्त हुआ। इसी प्रकार और भी कहा है:—

लग्नेश्वरे हीन वले सुखस्थे नीचेऽर्के युक्ते यदि वा
सपापे जलग्रहेणापि युते सुखेशे बलेन हीने जलराशि मग्नः

अर्थात यदि लग्नाधिपति निर्बल होकर चतुर्थ भाव में हो और नीच हो तथा सूर्य युक्त हो अथवा पापी ग्रहों के साथ हो तथा निर्बल जलीय ग्रहों से चतुर्थ भाव का स्वामी युक्त हो तो जल द्वारा मृत्यु को पाता है। यहाँ अष्टम भाव का संकेत तक नहीं, मरण योग लग्नेश

द्वारा ही सिद्ध हुआ है। अतः लग्न तथा लग्नेश का विचार मरण हेतु के निश्चय करने में उतना ही आवश्यक है जितना कि अष्टम भाव तथा उसके स्वामी का। मरण विधि के निर्धारित करने के सम्बध में कुछ एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। निम्नलिखित कुण्डली वाले सज्जन की मृत्यु ग्रन्थि (appendicitis) द्वारा हुई:—
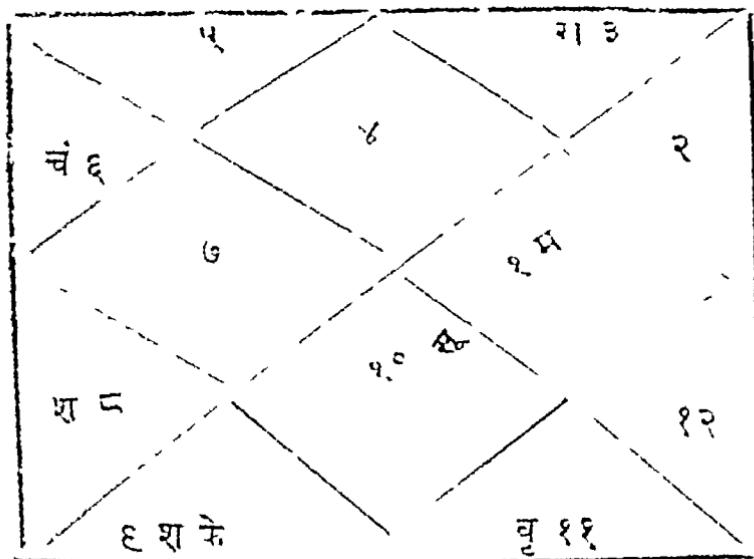
यहाँ लग्न तथा अष्टम स्थान देखने चाहिये। लग्न पर मंगल की दृष्टि है उसी मंगल की दृष्टि अष्टमेश शनि पर भी है। और कोई ऐसा ग्रह नहीं जो लग्न तथा अष्टम दोनों पर प्रभाव रखता हो अतः मौलिक रूप से मंगल ही मरण का हेतु माना जायेगा। मंगल पञ्चमाधिपति है अतः पेट का प्रतिनिधि हुआ। इस बात की पुष्टि शनि द्वारा हो रही है। शनि जो अष्टम भावाधिपति है पञ्चम स्थान में जा पहुँचा है अतः वह भी पेट ही को मृत्यु का कारण बतला रहा है। गुरु की अष्टम स्थान में स्थिति भी अब तो ऊपर ही की

कथा कहती है क्योंकि गुरु नवम् भाव का स्वामी है जो कि पञ्चम से पञ्चम है अर्थात पेट को दर्शाता है।

निम्नलिखित कुण्डली वाले मनुष्य की मृत्यु जल में डूब कर हुई।
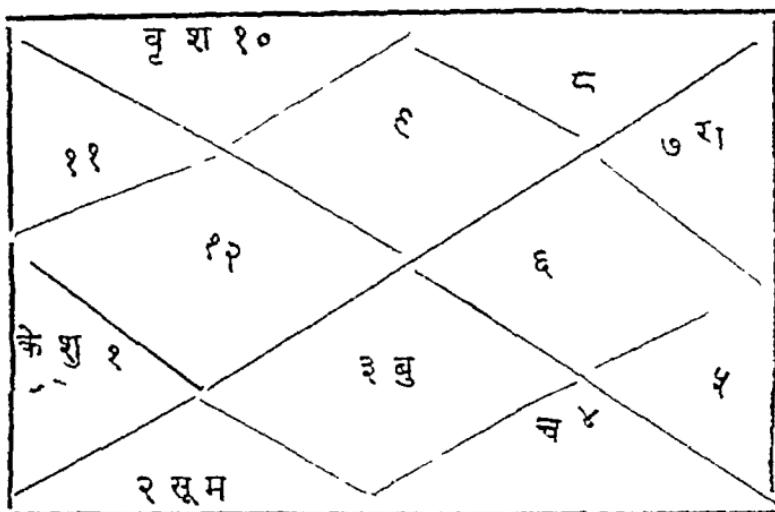
लग्न लग्नाधिपति, अष्टम् अष्टमाधिपति पर यदि आप विचार करे तो आपको पता चलेगा कि शनि तृतीय स्थान का अर्थात अष्टम से अष्टम स्थान का स्वामी होकर चन्द्र के साथ-साथ गुरु द्वारा प्रभावित है अतः गुरु जो कि लग्न, तृतीयाधिपति, अष्टम तथा अष्टमाधिपति सबको प्रभावित कर रहा है मरण के हेतु को बतावेगा। गुरु चतुर्थ (जलीय) केन्द्र का स्वामी है तथा मीन (जलीय) राशि का भी स्वामी है अतः जल का द्योतक है। चन्द्र भी अष्टम पर जलीय प्रभाव रखता है। अतः जल में डूबने का योग सिद्ध हुआ।

अत्रोदाहरणमाह।

तुला लग्ने तु जातस्य शुक्रो जन्मगतो यदि
भूमिपुत्रेण संयुक्तो वह्न्यादिमरणमादिशेत् ॥६२॥

तुला लग्न में जन्म हो और शुक्र लग्न में स्थित हो, लग्न में मंगल भी हो तो उस मनुष्य का मरण अग्नि शस्त्र इत्यादि से कहना चाहिए। कारण यह है कि ऐसी स्थिति में मंगल का प्रभाव न केवल लग्न पर तथा लग्नेश पर ही पड़ता है बल्कि अष्टम स्थान तथा अष्टम स्थानाधिपति पर भी पड़ता है। विचारणीय दोनों भावों तथा उनके स्वामियों पर प्रभाव डालने के कारण मंगल मरण के कारणों को विशेष रूप से दर्शाता है। मगल "अग्नि" "शस्त्र" आदि तो है ही अतः शस्त्रादि द्वारा मरण युक्ति युक्त ही है। यह योग गाधी जी की कुण्डली में देखिए (पृष्ठ सख्या ३०)।

इसी प्रकार यदि आप हिटलर की कुण्डली पर ध्यान दे तो देखियेगा कि लग्न लग्नाधिपति, अष्टमाधिपति सब पर मंगल का प्रभाव है। अन्य ग्रहों का मरण द्योतक अंगों (factors) पर इतना प्रभाव नहीं। अतः मंगल मुख्यतया मरण हेतु को दर्शाता है। यहाँ सूर्य का शुक्र से योग लाभाधिपति रूपेण (बाहु Arms) तथा गुरु की दृष्टि तृतीयाधिपति रूपेण (बाहु Arms) इस बात की द्योतक है कि उसकी अपनी बाहु युगल का भी अर्थात स्वयं उसका अपनी मृत्यु मे हाथ हो अर्थात आत्मघात करे तथा पिस्टल आदि द्वारा स्वयं अपने आप को मार डाले।

लग्नाधिपो यदा नेत्रे अष्टमे ह्यष्टमाधिपः
भव रामाधिपो नेत्रे योगोऽयमात्मघातकः ॥६३॥

जब लग्नाधिपति द्वितीय स्थान में हो, अष्टम स्थान का स्वामी अष्टम में ही हो, तृतीय तथा एकादश भाव के स्वामी द्वितीय भाव में हों तो "आत्मघात" (Suicide) का योग बनता है क्योंकि ऐसी स्थिति मे अष्टम भाव तथा उसके स्वामी पर तथा लग्न के स्वामी पर ऐसे ग्रहों का प्रभाव है जो स्वयं कुण्डली वाले को ही

मरण का हेतु बना देते हैं अर्थात उसकी भुजाएँ (जो कि उसके तृतीयाधिपति तथा एकादशाधिपति द्वारा प्रदर्शित हैं) ही उसके मरण का हेतु हैं। यह आत्मघात योग हिटलर की कुण्डली में आपको देखने को मिलेगा।

गुरो राज्य कृपायां विशेषमाह।

मिथुन लग्ने तु जातस्य गुरुर्दशमाधिपो भवेत
दशमाद्दशमञ्च यत्स्थाने तस्यापि नायको गुरुः॥
अतएव मिथुन जातस्य बलयुक्तो हि यदा गुरु
राज्यकृपा कटाक्षं स्याद्राज्यमानं विशेषतः ॥६४॥

मिथुन लग्न में जन्म हो तो गुरु न केवल दशम स्थान (जो कि राज्य स्थान है) का स्वामी हो जाता है अपितु दशम भाव से दशम अर्थात सप्तम भाव का भी स्वामी गुरु ही होता है। राज्य स्थान के द्योतक दो स्थानों का स्वामी होने के कारण गुरु राज्य कृपा का विशेष प्रतिनिधित्व करता है और नैसर्गिक रूप में भी "राज्यकृपा" गुरु का एक विशेष गुण है। इन कारणों से जब मिथुन लग्न वाले किसी व्यक्ति का गुरु बलवान हो तो प्रकट है कि ऐसा गुरु राज्य की ओर से धन मान पदवी इत्यादि की प्राप्ति करवा देगा।

लग्न दशमादिवशादाजीविकामाह।

लग्न धनञ्च लाभं च जातानां दशमेव च
एते भावास्तु चिन्तव्या आजीविका यास्तु निर्णये ॥६५॥

जब मनुष्य की आजीविका (Profession) के सम्बन्ध में विचार करना हो तो लग्न, द्वितीय भाव, एकादश भाव, तथा दशम भाव तथा इन भावों के स्वामियों पर विचार करना चाहिए। आजीविका

वास्तविक अर्थों में तभी आजीविका कहला सकती है जब कि उससे मनुष्य को धन की प्राप्ति हो अन्यथा मनुष्य का क्रिया कलाप केवल विनोदमात्र अथवा समय यापन मात्र ही होगा। यही कारण है कि आजीविका विषय में धन सम्बन्धी सब भावों पर विचार करना आवश्यक है।

अत्रोदाहरणमाह।

उपरोक्त भावेशु ह्यथ तत्पतीशु
अगोखरेऽथवा सूर्यजस्य ॥
यदा प्रभावो ह्यनुभूयते तदा
जातश्च वैद्यो भवतीति निश्चयः ॥६६॥

जब द्वितीय भाव, लग्न, लाभ तथा दशम भाव तथा इन भावों के स्वामियों पर राहु सूर्य तथा शनि का प्रभाव, योग अथवा दृष्टि द्वारा, पड़ता हो तो मनुष्य वैद्य अथवा डाक्टर होता है। कारण यह है कि राहु सूय तथा शनि मे से प्रत्येक किसी न किसी प्रकार का वैद्य अथवा डाक्टर कारक रूपेण है। इसीलिये कर्म तथा धनद्योतक भावों इत्यादि पर इस प्रकार के ग्रहों का प्रभाव यदि मनुष्य को डाक्टर अथवा वैद्य बनाडाले तो उपयुक्त ही है। प्रसङ्गवश कुच्छ एक डाक्टरों की कुन्डलियाँ यहाँ दी जाती हैं।

निम्नलिखित कुण्डली डाक्टर सिकरोरिया, सर्जियन मेडिकल कालिज आगरा की है। जन्म संवत् १९८७ इटावा इष्ट ५४।२।
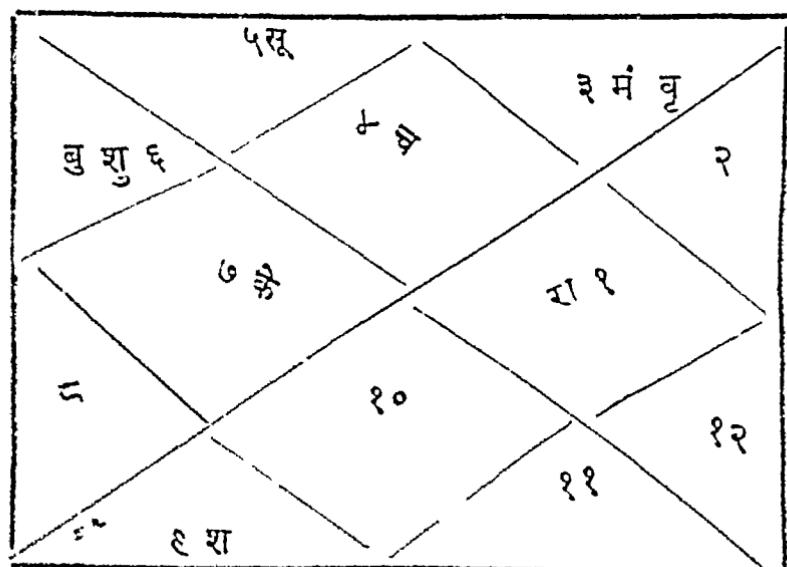
यहाँ द्वितीय भाव पर सूर्य का, दशम पर राहु का, दशमाधिपति पर शनि का, लाभ स्थान पर सूर्य का केन्द्रीय प्रभाव, लाभाधिपति का सूर्य तथा राहु के प्रभाव में तथा शनि द्वारा दृष्ट होना, एव लग्न लग्नाधिपति का राहु से केन्द्र में होना, प्रमाणित कर रहा है कि धन द्योतक, लग्न द्वितीय आदि सभी भावों तथा उनके स्वामियों पर सूर्य शनि राहु—डाक्टरी-सूचक ग्रहों का प्रभाव है जिससे धन प्राप्ति डाक्टरी द्वारा होने का योग है ।
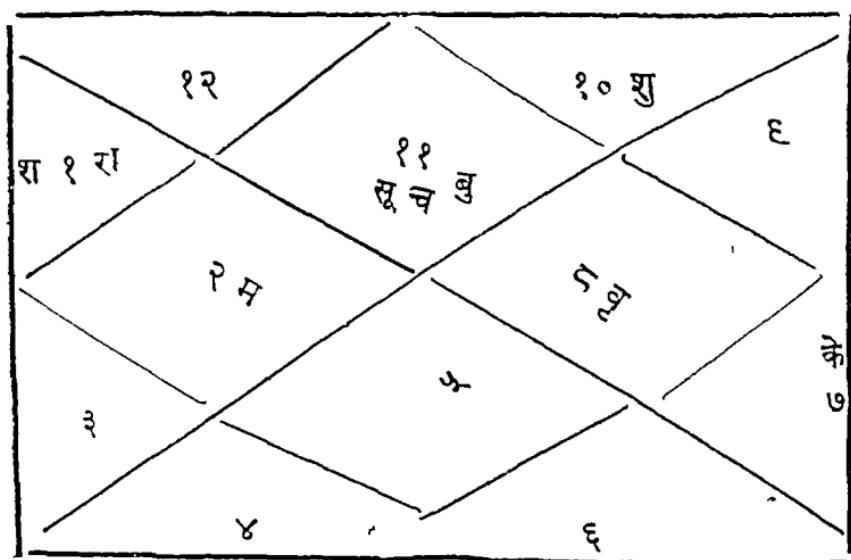
यह कुण्डली डाक्टर आर एस शर्मा आगरा की है यहाँ द्वितीय (धन) स्थान को सूर्य तथा शनि ने घेरा है। दशम भाव पर राहुगत राशि के स्वामी मङ्गल की दृष्टि है। उसी मगल की दृष्टि एकादश भाव, उसके स्वामी, तथा द्वितीय भाव के स्वामी तथा कारक सब पर पड रही है। लग्न में सूर्य है लग्नाधिपति स्वय शनि होकर राहु से युक्त है। अतः डाक्टरी द्योतक शनि, राहु सूर्य का प्रभाव धनदायक घरों तथा उनके स्वामियों पर सिद्ध होने से डाक्टर होना स्पष्ट हुआ।

निम्नलिखित कुन्डली डाक्टर ओ०पी०भटनागर मेडिकल कालिज आगरा की है। लग्न पर डाक्टर सूर्य का प्रभाव प्रत्यक्ष है।
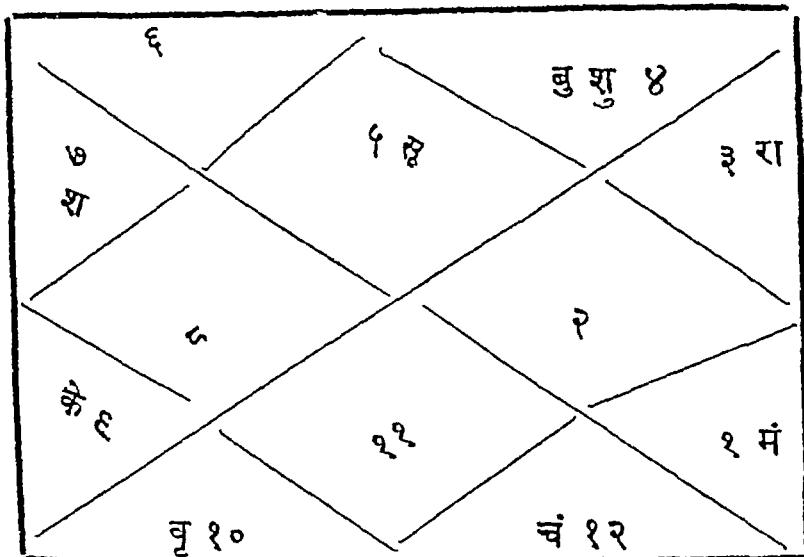
द्वितीय भाव सूर्य तथा शनि के मध्य में है तथा राहु से केन्द्रित है। द्वितीयाधिपति शनि द्वारा दृष्ट तथा राहु सूर्य के मध्य में है। दशम भाव की एक ओर राहु तथा दूसरी ओर शनि का प्रभाव है। दशम स्थान का स्वामी बुध की भान्ति शनि राहु तथा सूर्य के प्रभाव में है। बुध पुनः लाभाधिपति के रूप में भी वुही प्रभाव लिये हुये है। एकादश स्थान में राहु भी विद्यमान है। पूर्ण रूप से धन सम्बन्धी सभी भवों तथा उनके स्वामियों पर डाक्टरी द्योतक सूर्य, शनि, राहु का प्रभाव पाया गया इसीलिये डाक्टरी से आजीविका सिद्ध हुई।

अगले पृष्ठ पर दी गई कुन्डली श्री मृत्युञ्जय शास्त्री वैद्य कानपुर
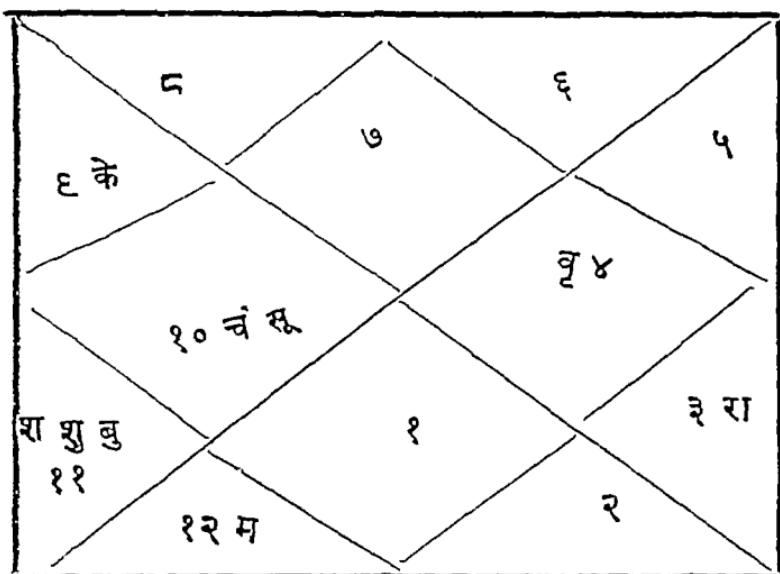
की है। यहाँ लग्न सूर्य द्वारा केन्द्रित है। लग्नाधिपति शुक्र शनि के साथ है तथा द्वितीय भाव पर शनि की दृष्टि है। द्वितीय भाव के स्वामी पर सूर्य की दृष्टि तथा राहु शनि का प्रभाव है। दशम भाव सूर्य से दृष्ट है। दशम भाव का स्वामी सूर्य के साथ है। लाभ स्थान पर शनि की दृष्टि है। लाभाधिपति स्वय सूर्य है जो कि राहु तथा शनि के प्रभाव के बीच मे स्थित है। अतः यहाँ भी धन तथा आय के द्योतक सभी द्वितीयादि भावों तथा उनके स्वामियों पर सूर्य शनि तथा राहु का प्रभाव स्पष्ट होने से व्यक्ति का वैद्य होन ज्योतिष सम्मत हुआ।

जन्म १०-१२-१८९६ एक महान डाक्टर
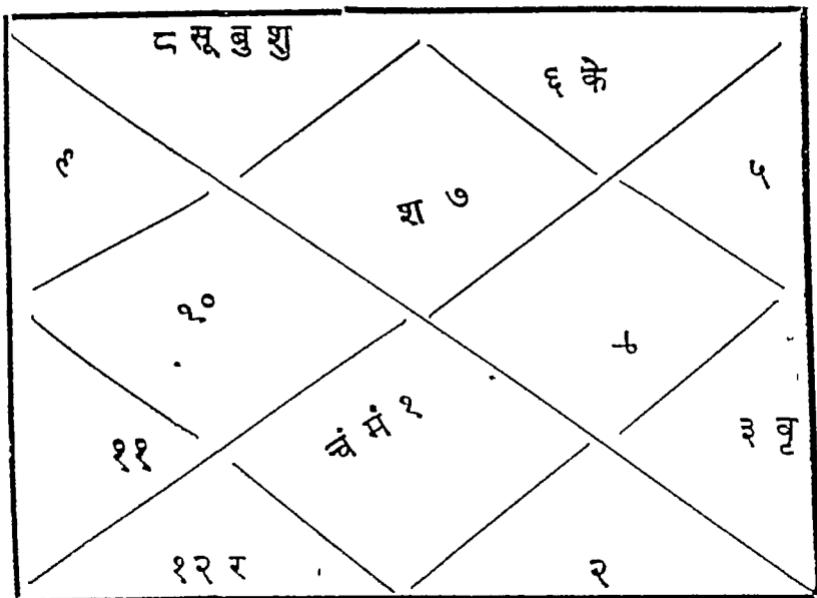
लग्न में शनि, लग्नाधिपति सूर्य के साथ, धन स्थान में सूर्य, घनेश पर शनि की दृष्टि, दशम पर शनि की दृष्टि, दशमाधिपति पर शनि की दृष्टि, एकादश पर सूर्य का केन्द्रीय प्रभाव, एकादशाधिपति स्वयं सूर्य है तथा शनि से द्वितीय स्थान में होने के कारण शनि से प्रभावित (शनि सूर्य के एक ओर है तथा दूसरी ओर शनि की दृष्टि) है।
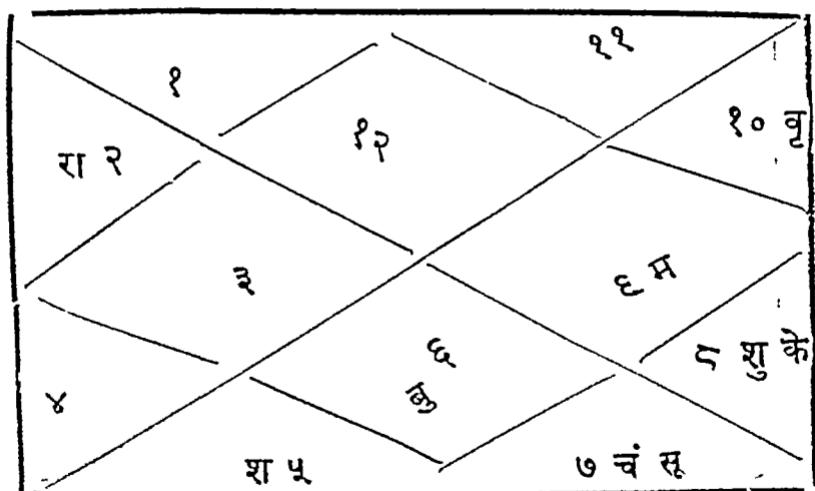
इस प्रकार व्यक्तियों की आजीविका (Profession) का विचार धन सूचक सभी भावों से करना चाहिये। अब देखिये कुन्डली श्री आइजन होवर प्रधान यू० एस० (अमरीका) —

यहाँ मंगल जो कि सेना का कारक है स्वयं द्वितीयाधिपति है और प्रमुख केन्द्र (दशम) में मित्र राशि में, उच्चाभिलाशी होकर स्थित है। यही नहीं बल्कि मगल को शुभ मध्यत्व भी प्राप्त है। इसके अतिरिक्त शुक्र मगल से द्वादश है बुध उससे केन्द्र में है, और किसी पापी ग्रह की मंगल पर दृष्टि नहीं, मगल प्रबलतम है और दशम स्थान को प्रभावित भी कर रहा है। अतः सेना का प्रमुख आफिसर (Supreme Commander) बनना सिद्ध है।

आजीविका के सम्बन्ध में यू० पी० के प्रसिद्ध डाकू मान सिंह की कुण्डली भी पाठकों के लिये कुछ कम शिक्षा प्रद न होगी, यह कुण्डली नीचे दी जा रही है —
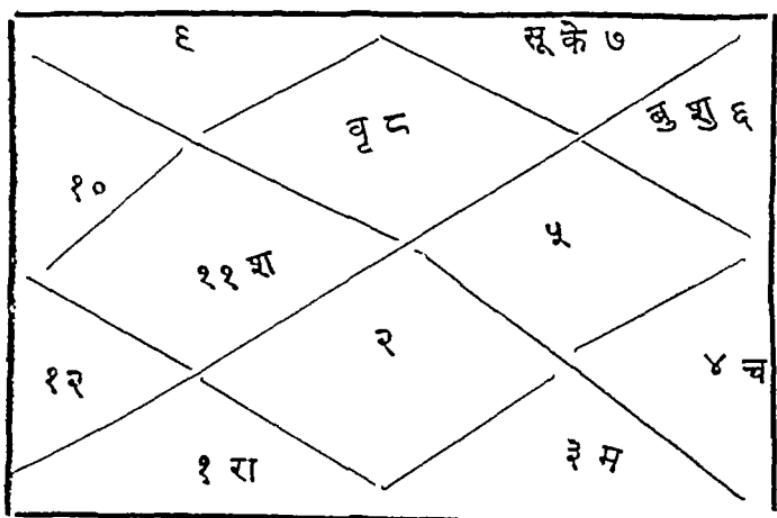
पाठक वृन्द देखेंगे कि इस कुन्डली में मङ्गल धन स्थान को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। वुही मङ्गल लाभ स्थान तथा उसके स्वामी

बुध दोनों को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। पुनः वुही मङ्गल सप्तमाधिपति शुक्र को जो दशम से दशम भाव का स्वामी है देख रहा है मङ्गल के अतिरिक्त और अन्य कोई ग्रह नहीं जो आजीविका द्योतक इतने घरों पर प्रभाव डाल रहा हो। अतः स्पष्ट है कि मङ्गल मुख्यतया इस व्यक्ति की आजीविका को दर्शा रहा है। अब देखिये कि मङ्गल और क्या अभिनय कर रहा है। यह ग्रह नैसर्गिक क्रूर ग्रह है (अरब विद्वान इसे जल्लादे फलक कहते हैं) ऐसे क्रूर मङ्गल का षष्टाधिपति होना मङ्गल में और भी क्रूरता भर देगा क्योंकि षष्ट स्थान भी क्रूरता का स्थान है। पुनः षष्ट स्थान में राहु के स्थित होने से तथा मंगल राहु के स्थान का अधिपति होने के कारण भी छठे घर (शत्रुता और क्रूरता) का प्रतिनिधित्व करेगा। इस प्रकार हमने देखा कि मंगल तीन रूपों में क्रूरता के अवगुण को ग्रहण किए हुए हैं। ऐसे क्रूरतागुणसम्पन्न मगल का आजीविका के सब साधनों (लाभ स्थान लाभाधिपति इत्यादि) पर प्रभाव डालना अवश्य ही उन साधनों को हिसात्मक बनावेगा इसमें सन्देह नहीं। यही कारण था की इस व्यक्ति की आजीविका मे हिंसा का बहुत भारी हाथ था।

विविध योग अध्याय

अधियोगमाह।

चन्द्राच्च यदा शुभाः खेटाः षष्टाष्टमदने गताः
ते सर्वे हि शुभं कुर्यु योगोऽयमधिनामकः ॥
अस्य योगे शुभत्वे तु चन्द्रलग्नत्वकारणम्
तत्र च शुभा दृष्टि शुभदृष्टिः पार्श्वगापि च ॥६७॥ *

चन्द्र से षष्ट, सप्तम तथा अष्टम स्थान में, अर्थात इन तीनों ही स्थानों में कोई शुभ ग्रह स्थित हों तो इस योग को "अधियोग" अथवा "चन्द्राधियोग" के नाम से पुकारा जाता है यह योग उत्तम योंगो में से है और विशेष धन तथा मान देने वाला होता है। अनुभव भी ऐसा ही है। इस योग की शुभता के कारणों पर यदि विचार किया जाय तो यही पता चलेगा कि इस शुभता में चन्द्र का लग्न" समान होना अथवा लग्नवत् फल देने की क्षमता रखना ही विशेष कारण है। अतः जब चन्द्र से छटे, सातवे तथा आठवे घर में शुभ ग्रह हों तो स्पष्ट है कि चन्द्र लग्न पर शुभ दृष्टि पड़ेगी जिससे चन्द्र लग्न को प्रबलता मिलेगी! चन्द्र के आस-पास अर्थात चन्द्र से द्वादश तथा द्वितीय भावों पर भी शुभ दृष्टि पड़ेगी जिसका लाभ भी चन्द्र लग्न ही को प्राप्त होगा। अतः चन्द्र लग्न और भी बलवान हो जायेगा। अत. स्पष्ट है कि यहाँ पार्श्वगामिनी दृष्टि का चन्द्र लग्न के शुभत्व में कोई कम हाथ नहीं है। यदि पार्श्वगामिनी का बल चन्द्र लग्न को न मिल पाता तो चन्द्र पर शुभ दृष्टि ही पर्याप्त न होती तथा इस प्रकार षष्ट तथा अष्टम स्थान में ग्रहों की स्थिति के वर्णन की कोई आवश्यकता न होती। अतः हमारा विश्वास है कि "अधियोग" के शुभत्व में पार्श्वगामिनी दृष्टि द्वारा भी चन्द्र को बल मिलता है। पार्श्वगामिनी दृष्टि के लिये देखिये श्लोक सख्या २२।

स्नायु रोगमाह।

यस्माद्ष्ट गतो राहु भावादेकादशे यमः
तस्य भावस्य वक्तव्यमर्द्धनाड़ी नटेश्वर. ।।६८।

जिस भाव से अष्ट स्थान पर राहु स्थित हो और उसी भाव से एकादश स्थान पर शनि बैठा हो तो उस भाव को अर्द्धनाड़ी

नटेश्वर नाम का रोग होता है। अर्थात वह भाव जिस पिता 'पुत्र, स्त्री इत्यादि सम्बन्ध को दर्शाता है उसको अधरङ्ग नाम का स्नायु रोग (Paralysis) होता है। जैसे कन्या लग्न हो राहु षष्ट में तथा शनि नवम स्थान में हो तो बड़ी बहिन (एकादश स्थान की राशि) को अधरंग हो। कारण यह कि मरण का हेतु दर्शाने वाले दोनों ग्रह (शनि तथा राहु) जिनका कि प्रभाव एकादश स्थान पर तथा उस स्थान से अष्टम स्थान पर पड़ रहा है स्नायु(Nerves) के प्रतिनिधि हैं। अतः स्नायु रोग से मृत्यु देंगे उदाहरणार्थ निम्न-लिखित कुन्डली में एकादश स्थान (जो कि बड़े बहिन भाइयों का स्थान हैं को) देखिए :—
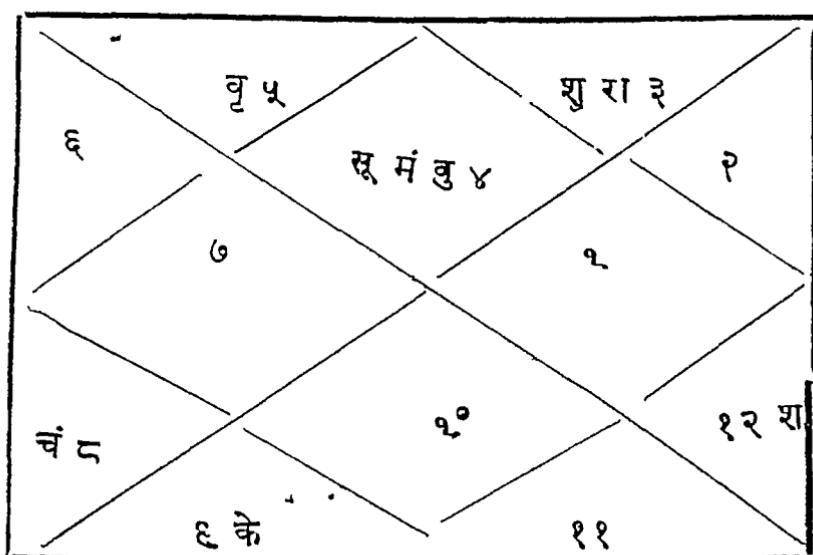
शनि उस स्थान से एकादश है तथा राहु का प्रभाव उस स्थान से अष्टम् अर्थात छटे पर पड़ रहा है। इस व्यक्ति की बड़ी बहिन का देहान्त नाड़ी रोग (Paralysis) द्वारा हुआ। कारण यही है कि राहु तथा शनि दोनों नस नाड़ी के "कारक" हैं। तथा दोनों का प्रभाव बड़ी बहिन के जीवन सम्बन्धी भावों (लग्न तथा अष्टम्) पर

पड़ रहा है। क्योंकि शनि तो बहिन के लग्न को तथा उसके अष्टम भाव दोनों को देख रहा है और राहु अष्टम को देख रहा है तथा लग्नाधिपति से युक्त भी है, अतः नस नाड़ी के रोग से मृत्यु ज्योतिष शास्त्र द्वारा सिद्ध हुई।

मूक योगमाह

द्वितीय भावो वाणौ प्रयुक्तो
वाणेर्विचारस्तु पुत्रात्तथैव।
गुरुश्चसोमात्मजः कारकौ स्मृतौ
हीनैश्चसर्वै मूकत्व योगः ॥६६॥

द्वितीय भाव से वाणि का विचार किया जाता है इसी प्रकार वाणी का विचार पचम भाव से भी किया जाता है गुरु तथा बुध वाणि के कारक माने ही गये हैं। जब यह सब दुर्बल हों तो मूकत्व गूगा होने का) योग बनता है अर्थात जब द्वितीय भाव, पचम भाव इनके स्वामी तथा गुरु और बुद्ध ये सभी निर्बल अथवा पाप युक्त पाप दृष्ट हों तो मनुष्य को गूगा बना देते हैं।

अत्रोदाहरणम्

वृषभ लग्ने तुजातस्य गुरुज्ञौ नेत्र भावगौ
भौमार्कजाभ्याञ्च संदृष्टौ मूकत्व दर्शयतो नृणाम् ॥७०॥

वृषभ लग्न में जन्म हो और गुरु तथा बुद्ध दोनों द्वितीय स्थान में स्थित हों। उन दोनों पर मङ्गल तथा शनि की प्रबल दृष्टि हो तो गूंगा बनाते हैं। कारण स्पष्ट है कि वाणि के प्रति-

निधि भाव, तथा ग्रहों पर पाप प्रभाव पड़ता है जिससे वाणि का नाश होकर मूकत्व की प्राप्ति होती है।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली देखिये:—
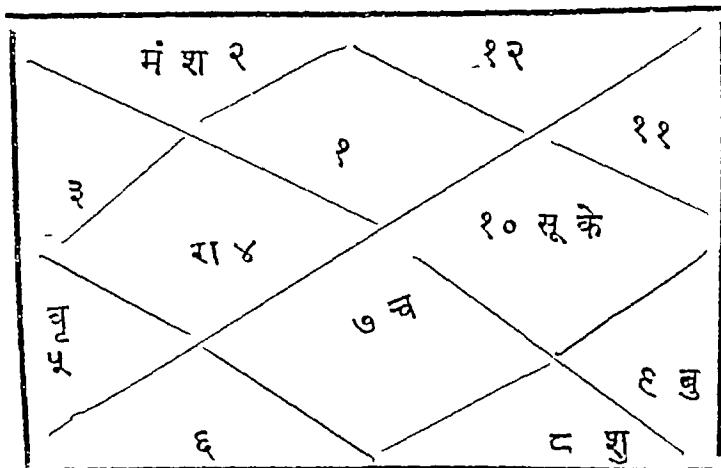
यहाँ द्वितीय, वाणी के भाव में दो पापी ग्रह स्थित हैं। वुही दोनों पापी ग्रह द्वितीय भाव के स्वामी शुक्र को भी पूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। पंचम भाव तथा गुरु पर मङ्गल की दृष्टि है। बुध पर भी मङ्गल की दृष्टि है। पंचमाधिपति सूर्य पर भी राहु का प्रभाव है। इस प्रकार द्वितीय भाव, द्वितीयेश, बुद्ध-वृहस्पति तथा पंचम पचमेश सब वाणि द्योतक अग पाप प्रभाव से पीड़ित हैं। अतः जातक का गूँगा होना सिद्ध ही है।

म्लेछैः सह सङ्गयोगमाह।

षष्ट भावः स्मृतो म्लेच्छो राहुरपि म्लेच्छएवहि
षष्टे राहोः स्थिति स्तस्माद् राहवे वलदायिनी ॥७१॥

छटे स्थान को म्लेच्छ स्थान माना है। राहु म्लेच्छों का कारक

ग्रह है। यदि पष्ट भाव में राहु स्थित हो तो राहु को अनुकूलता प्राप्त होने से बल प्राप्त होता है। चूँकि नियम है कि बलवान ग्रह अपने गुण, वस्तुओं इत्यादि से मनुष्य का सयोग करवा देता है अतः राहु का बलवान होना मनुष्य को म्लेच्छ प्रिय बनावेगा युक्ती-युक्त ही है।

अत्रोदाहरणमाह ।

वृषभ लग्ने तु जातस्य चन्द्रो षष्ट गतो यदि
राहुर्युक्तास्तुतत्रैव कुरुते म्लेच्छ प्रियं नरः ॥७२॥

वृषभ लग्न में जन्म हो और चन्द्र छटे भाव में राहु के साथ स्थित हो तो मनुष्य म्लेच्छों की सगति में रहने वाला होता है। कारण यह है कि चन्द्र एक तो वैसे ही मन का कारक है दूसरे सग स्थान (तृतीय) का स्वामी होने से "मित्रता" की भावना का पूर्ण प्रतीक हुआ। ऐसे चन्द्र का योग (छटे म्लेच्छ स्थान, तथा म्लेच्छ कारक ग्रह से) यदि मनुष्य का मेल जोल म्लेच्छों से करवा दे तो तर्क सम्मत ही है।

उन्माद योगमाह ।

लग्न चतुर्थं च तथा हि चन्द्रमा
दिशन्ति सर्वे मनसो हि वेदनां
भावञ्च वाणमपि सोमजस्तथा
दिशेच्च वृतिमय तर्क संभवाम् ॥७३॥

वेदनाया यदा क्षोभं तर्क शक्तिश्चक्षीयते
जातकस्य तदा नूनमुन्मादो जायते ध्रुवं।
जातस्य हि यदा लग्नं चतुर्थं वाणमेव च
सोम सोमात्मजश्चैव नष्टाः उन्मत्त एव सः ॥७४॥

लग्न चतुर्थभाव तथा चन्द्रमा यह सब मानसिक व्यथा के प्रतिनिधि हैं अर्थात् वेदनात्मक मन (Emotional mind) के प्रतीक हैं। पचम भाव तथा बुद्ध तर्क की भावना (Intellectual state of mind) को दर्शाते हैं। जब सवेदनात्मक मन (Emotional mind) तथा तार्किक मन (Intellectual mind) की शक्ति क्षीण होती है तो उन्माद (Lunacy) की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि जब कुन्डली मे लग्न, चतुर्थ भाव, पचम भाव, चन्द्र तथा बुद्ध सभी निर्बल (पाप दृष्ट तथा युक्त) होते हैं तो उन्माद की उत्पत्ति करते हैं।

अत्रोदाहरणम।

मिथुन लग्ने जनिर्यस्य पष्टे बुध चन्द्रो भृगुः
शनिना च यदा दृष्टाः उनमादश्च ददन्ति हि ।७५॥

मिथुन लग्न में जन्म हो और छटे स्थान में बुद्ध चन्द्र तथा शुक्र स्थित हों। उन पर शनि की दृष्टि हो तो मनुष्य उन्मादी (पागल) हो जाता है। कारण स्पष्ट है कि लग्नाधिपति चतुर्थ-स्थानाधिति पचम स्थानाधिपति, बुद्ध तथा चन्द्र, तर्क तथा वेदना (Intellect & Emotion) के सभी प्रतिनिधियों (Representatives) पर शनि की दृष्टि पड़ती है अतः उन्माद की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकरण मे हम पाठकों का ध्यान एस्ट्रोलोजिकल मेगजीन (Astrological Magazine) बेंगलोर के जनवरी १९५६ के प्रकाशन की ओर दिलाते है जिसमें कि ऐसी कुन्डलियाँ प्रकाशित हुई है जिनमें कि जातको को किसी न किसी रूप में पागलपन अथवा

मानसिक व्याधि हुई है। अतः उपरोक्त नियमों को उन कुन्डलियों में लगाकर हम अपने सिद्धान्त की पुष्टि क्रियात्मक प्रमाणों से करेंगे।
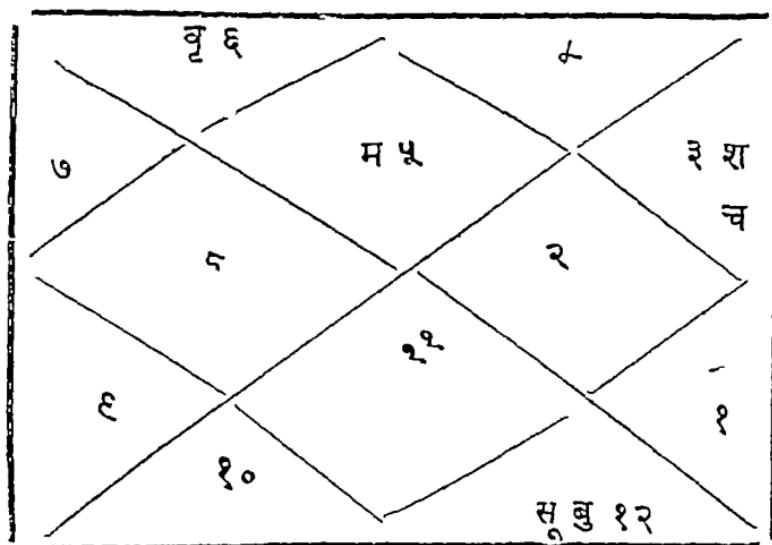
पहली कुन्डली एक ऐसे व्यक्ति की है जिसे Nymphomania नाम का मानसिक रोग है यहाँ लग्न में मङ्गल है लग्नेश पर शनि की दृष्टि है, चतुर्थ पर मङ्गल की दृष्टि है, चतुर्थ के स्वामी मङ्गल पर शनि की दृष्टि है, पचम पर शनि की दृष्टि है पचमाधिपति पर सूर्य की दृष्टि है, बुद्ध नीच का सूर्य के साथ मङ्गल तथा शनि से दृष्ट है तथा चन्द्र पर शनि का प्रभाव है। अतः पागलपन के सभी अङ्गों (Factors) पर पाप प्रभाव होने से मानसिक रोग सिद्ध हो जाता है।

दूसरी कुण्डली:—
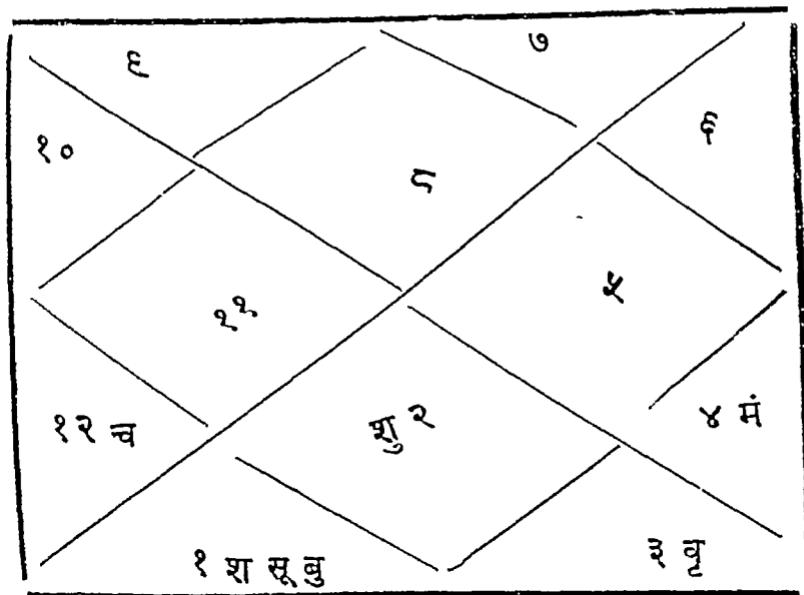
इसमें भी व्यक्ति पहली कुन्डली की भाँति मानसिक रोग से पीड़ित है। देखिये लग्न का स्वामी नीच राशि में होकर पड़ा है तथा सूर्य शनि एवं पापी बुद्ध से केन्द्र में है। चतुर्थ भाव पर मङ्गल की दृष्टि है चतुर्थाधिपति शष्ट में नीच राशि का सूर्य युक्त तथा मङ्गल से केन्द्र में है। पचम भाव मे पापी चन्द्र है तथा पचम भावाधिपति अष्टम (त्रिक) भाव में है तथा शनि से दृष्ट है। वुद्ध छटे (त्रिक) भाव में पापी ग्रहों के साथ है तथा चन्द्र सूर्य के समीप होने के कारण वहुत निर्वल है अतः यहाँ भी उन्माद सम्बन्धी सभी अङ्ग (Factors) पाप प्रभाव में होकर उन्माद को सिद्ध कर रहे हैं।

तृतीय कुण्डली:—
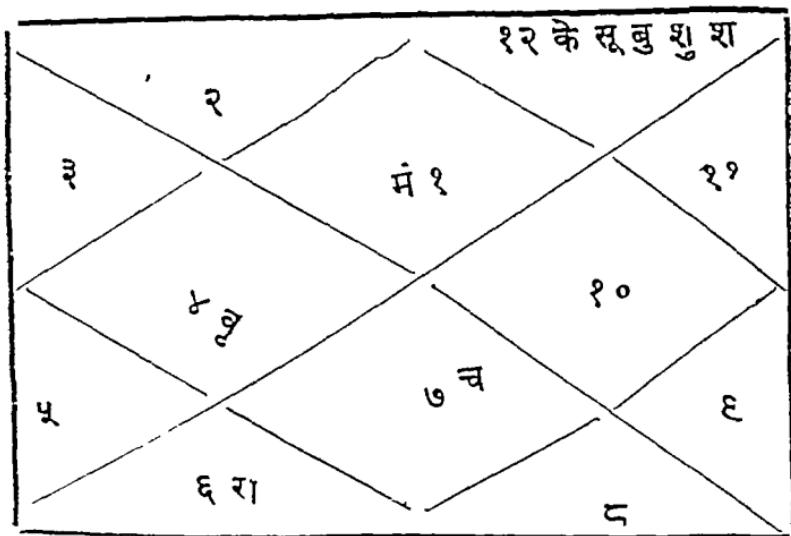
यहाँ सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर विदित होगा कि सूर्य तथा शनि द्वादश स्थान में उपस्थित हैं तथा शनि का प्रभाव द्वितीय स्थान पर पड़ रहा है अतः लग्न तथा लग्नाधिपति दोनों पाप प्रभाव में आ गये हैं। चतुर्थ भाव पर मङ्गल की दृष्टि है। चतुर्थ भाव का स्वामी स्वयं मनका कारक चन्द्र है जो कि यद्यपि पक्षबल में बली है तथापि मंगल से दृष्ट है तथा राहु एवं मंगल के प्रभाव में है। पंचम भाव के आस पास मङ्गल तथा राहु शनि सूर्य का प्रभाव है। पंचमाधिपति त्रिक भाव में शनि युक्त है। इस प्रकार मन तथा बुद्धि के द्योतक सभी अंग (factors) यहाँ भी पाप प्रभाव में पाये गये जिससे उन्माद का होना सिद्ध हुआ।

चतुर्थ कुण्डली:—
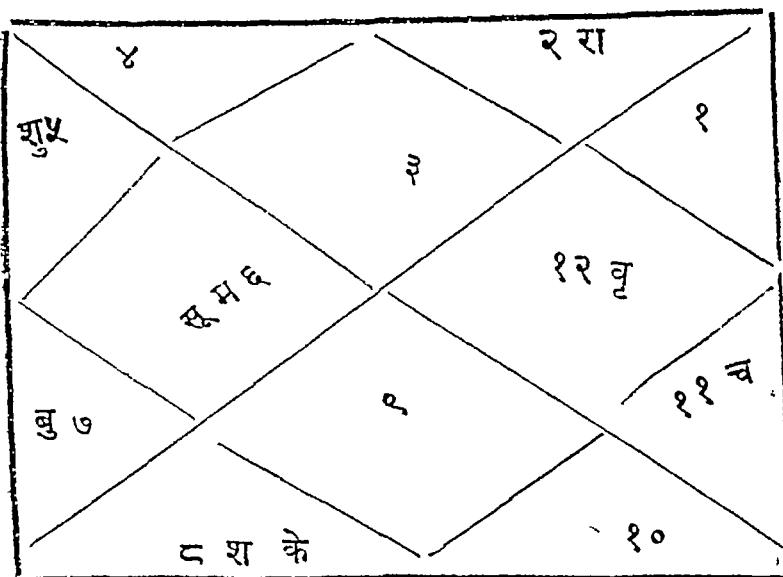
लग्न से केन्द्र में दो पापी ग्रह हैं। लग्नाधिपति बुध पर दुहरा पाप मध्यत्व है। चतुर्थ भाव में दो पापी ग्रह विद्यमान हैं। चतुर्थाधिपति को प्रबल पाप मध्यत्व है। पंचम भाव को प्रबल पाप मध्यत्व है। पंचमाधिपति अनिष्ट भाव में शत्रु राशि में शनि दृष्ट है। बुद्ध पाप मध्यत्व में है तथा चन्द्र यद्यपि पक्षबल में बली है तथापि शनि तथा केतु से केन्द्र में है। अतः बुद्धि तथा मन के द्योतक सभी अंग (factors) पुनः पाप प्रभाव में सिद्ध हो रहे हैं तथा उन्माद को प्रकट कर रहे हैं।

पञ्चम कुण्डली:—
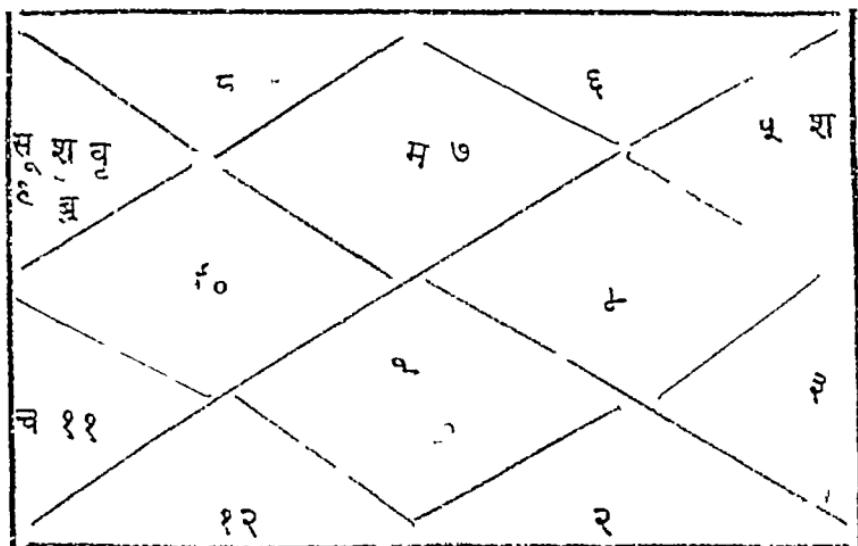
लग्न में मङ्गल है तथा लग्न शनि से दृष्ट है। लग्नाधिपति शत्रु राशि का अनिष्ट भाव में शत्रु सूर्य से युक्त है, चतुर्थ पर मङ्गल की दृष्टि है, चतुर्थ भावाधिपति कुछ बली है, पञ्चम भावाधिपति भी बली हैं परन्तु चन्द्र पर पाप प्रभाव है। अतः यहाँ पूर्ण उन्माद योग नहीं, मानसिक निर्बलता मात्र है।

षष्ट कुण्डली:—
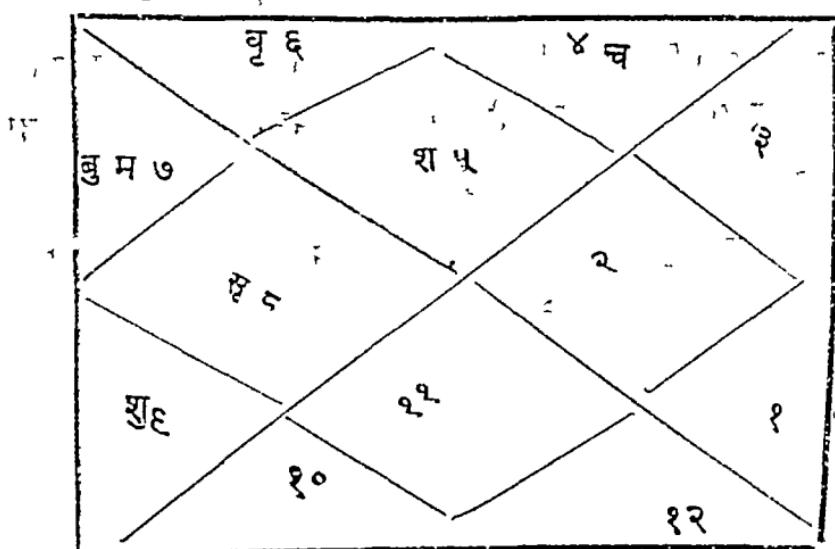
लग्न में पापी शनि, लग्नाधिपति चतुर्थ मे शनि से, चतुर्थ, चतुर्थ में पापी सूर्य, चतुर्थाधिपति पर शनि की दृष्टि, पञ्चम के आस-पास सूर्य तथा मङ्गल का प्रभाव, पञ्चमाधिपति पापी ग्रहों के बीच में, बुद्ध पाप युक्त तथा पाप दृष्ट, चन्द्र द्वादश में मङ्गल से प्रभावित। यहाँ मन तथा बुद्धि के सब अङ्ग पाप प्रभाव में पाये जाने के कारण उन्माद को उत्पन्न कर रहे हैं।

कुष्ट रोगमाह।

बुधो लग्नपश्चेत्त्वग्रूपमेव चन्द्रस्तवेवं रक्तस्य रूपम्।
शनेरगोश्चेद्दृग्योगयुक्तौ मलिन प्रभावात् कुष्टप्रदौ तौ।७६॥

यदि बुध लग्न का स्वामी हो (ऐसा मिथुन तथा कन्या लग्नों में ही संभव है) तो वह त्वचा का विशेष रूप से प्रतिनिधि अथवा प्रतीक होता है। कारण यह है कि लग्न को सामूहिक रूप से शरीर माना गया है अतः बुध का लग्नेश होना अधिक व्यापक रूपेण त्वचा का प्रतिनिधित्व करेगा अपेक्षाकृत उन दशाओं के जब कि बुध लग्न का स्वामी न होकर किसी अन्य भाव का स्वामी हो। इसी प्रकार चन्द्र यदि लग्न का स्वामी हो अर्थात लग्न कर्क हो तो उपरोक्त हेतुओं से चन्द्र रक्तका विशेष प्रतिनिधित्व करेगा। अब यदि ऐसा बुध चन्द्र को साथ लेकर, अथवा ऐसा चन्द्र बुध को साथ लेकर, राहु तथा शनि दोनों के प्रभाव में आ जावें अर्थात राहु तथा शनि से युक्त दृष्ट हों तो त्वचा तथा रक्त के पूर्ण प्रतिनिधियों पर राहु तथा शनि के दीर्घ असाध्य तथा मलिन प्रभाव के कारण रक्त तथा त्वचा में विकार की उत्पत्ति होगी। यही मलिन विकार कुष्ट है।

इसी आशय को "सर्वार्थचिन्तामणि" ग्रन्थ पुष्ट करता है। कहा है:—

शशांक तत्पुत्र विलग्न नाथा सराहव : केतुयुतास्त्वगे।
वैश्य तु कुष्ट मुनयो वदन्ति शुभेक्षितस्तत्र न भवेत्तदानीम् ॥

अर्थात चन्द्र बुध तथा लग्नेश, राहु अथवा केतु के साथ हों और उन पर कोई शुभदृष्टि न हो तो मुनि लोग ऐसे योग को वैश्य (बुध चन्द्र द्वारा निर्मित) कुष्ट रोग (Leprosy) का हेतु बतलाते हैं। सर्वार्थचिन्तामणि में लग्नाधिपति का साथ होना आवश्यक ठहराया है क्योंकि लग्न का स्वामी किसी भी रोग के योग में समस्त शरीर से रोग का सम्बन्ध स्थापित कर देता है जैसा कि कुष्ट इत्यादि रक्त तथा त्वचा विकार वाले रोगों में होता हैं।

कुष्ट के उदाहरणों में एस्ट्रोलोजिकल मेगजीन के आगस्त १६५८ अङ्क में से निम्नलिखित कुन्डलियाँ दी जा रही हैं।
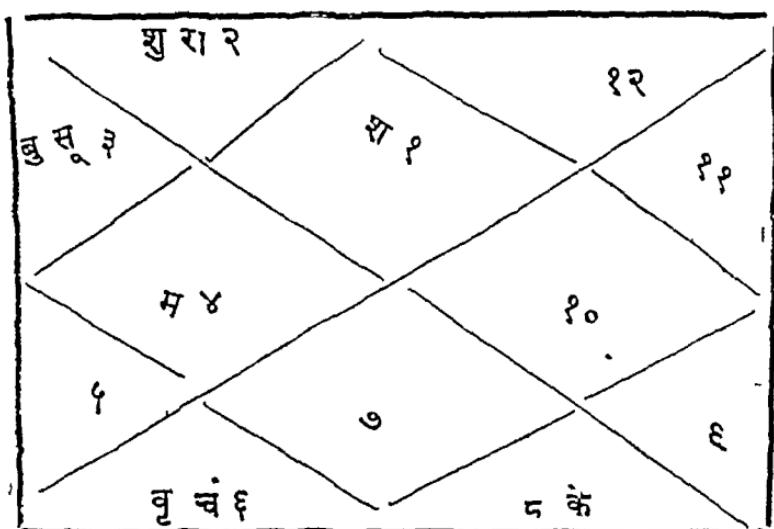
प्रथम कुण्डली में :—

यहाँ यह बात द्रष्टव्य है कि बुध का योग पापी सूर्य से भी है तथा उस पर शनि की दृष्टि भी है। अतः बुध जो त्वचा का द्योतक है शनि के मलिन प्रभाव में है। बुध का मलिन प्रभाव में होना त्वचा के लिये कितना हानिप्रद है यह आप को और भी स्पष्ट हो जायेगा जब आप इस बात पर विचार करेंगे कि बुध सूर्य-लग्न का स्वामी होने से त्वचा का पक्का प्रतिनिधित्व कर रहा है बल्कि बुध चन्द्र-लग्न का भी स्वामी है। अतः ऐसे बुध का शनि दृष्ट होना कोई साधारण बात नहीं। दूसरी बात जो इस कुन्डली में विचारणीय है वह यह है कि मङ्गल लग्नाधिपति होता हुआ न केवल नीच है बल्कि चतुर्थ स्थान मे है जहाँ पर कि मंगल दिकबल से शून्य होने के कारण और भी निर्बल हो जाता है। अतः ऐसा अकेला मङ्गल पट्ठों (Muscles) में भी रोग को दर्शाता है परन्तु इस रोग में चन्द्र का राहु इत्यादि के मलिन प्रभाव मे होना आवश्यक है। इसमें सन्देह नहीं कि चन्द्र षष्ट स्थान में कुछ निर्बल माना जा सकता है परन्तु पक्षबल में चन्द्र कोई निर्बल नहीं। अतः कुष्ट का प्रहार असाध्य रूप से नहीं हुआ।

दूसरी कुण्डली:—
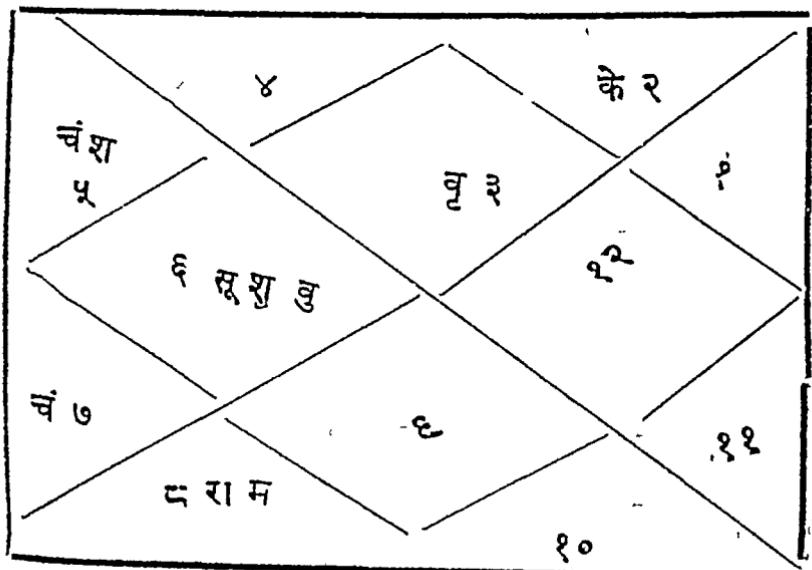
यहाँ तो बुध स्वयं लग्नेश है अतः बुध त्वचा का खूब प्रतिनिधि है बुध पर शनि का प्रभाव है क्योंकि बुध शनि से द्वितीय है तथा शनि 'अपनी तृतीय दृष्टि के कारण' दोनों ओर प्रभाव रखता है। इस प्रकार त्वचा रोग-युक्त हुई। चन्द्र शनि से युक्त है तथा राहु से केन्द्रित है, अतः इस कुन्डली में कुष्ट का प्रहार पर्याप्त है और रोग असाध्य प्रतीत होता है।

तीसरी कुण्डली:—
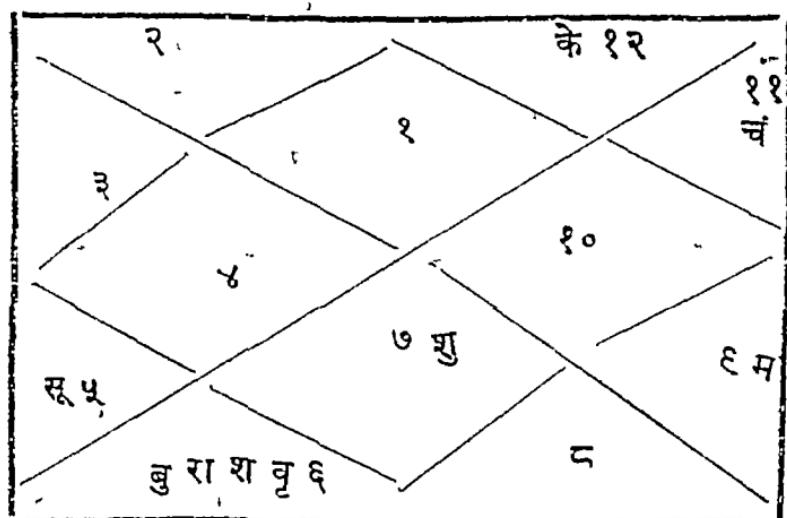
यहाँ बुध न केवल रोग स्थान में है बल्कि राहु तथा शनि से युक्त है, गुरू भी केतु की राशि का स्वामी होने के कारण रोग दायक ही है, चन्द्र छटे से छटे स्थान में सूर्य से दृष्ट है।

चतुर्थ कुण्डली:—
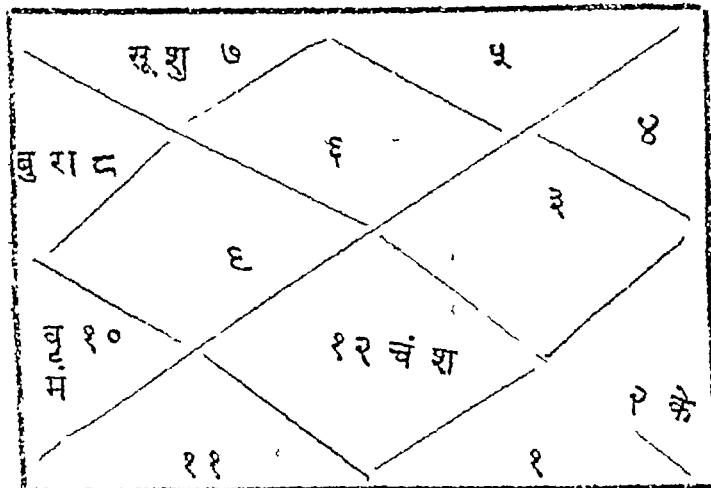
यहाँ भी बुध (त्वचा) लग्नाधिपति होकर राहु के साथ है। शनि जो कि नैसर्गिक रोग कारक है स्वयं रोग स्थान का स्वामी होता हुआ चन्द्र से युति कर रहा है। अतः रक्त को विकारमय बनाता है। इस कुन्डली में स्मरण रखने योग्य विशेष बात यह है कि बुद्ध लग्नाधिपति होने से त्वचा का पूर्ण रूपेण प्रतिनिधि हुआ है।

पञ्चम कुण्डली:—
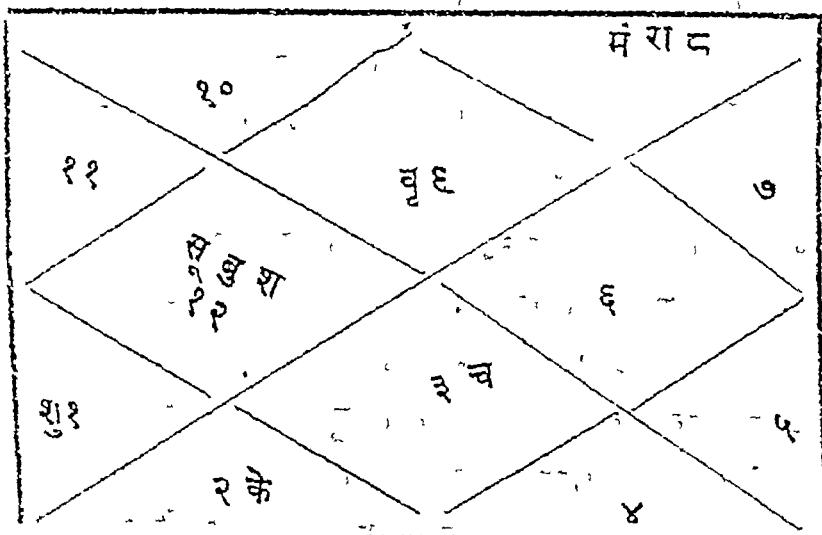
यहाँ भी बुध चन्द्र-लग्न का स्वामी है अतः त्वचा का पक्का प्रतिनिधि है। ऐसा बुध सूर्य तथा शनि के साथ होने से त्वचा को रोगी बनाता है। चन्द्र भी शनि तथा सूर्य से केन्द्रित है। और सब से बढ़कर मगल द्वारा दृष्ट है। मगल अपने में राहु का प्रभाव रखता है क्योंकि मगल राहु के साथ है। अतः राहु का मंगल द्वारा चन्द्र पर प्रभाव पड़ने के कारण रक्त में भी दोष आगया। चूँकि चन्द्र पर गुरु की पूर्ण दृष्टि है रोग साध्य है।

कारागार योगमाह।

राहोस्तुदृग्योग यदा ह्यन्त्ये
राहुस्थनाथस्य तथैव भूयात्।
अन्त्याधिपश्चेत् वीर्येण हीनः
कारागृहे तस्य स्थिति र्हिनूनम् ॥७७॥

जब राहु की दृष्टि अथवा युति द्वादश स्थान अथवा उसके स्वामी पर हो और द्वादश स्थानाधिपति निर्बल हो तो कारागार जाने का योग बनता है। द्वादश स्थान कारागृह स्थान माना गया है। राहु कारागृह का कारक है। अतः युक्ति स्पष्ट है। हाँ इतना विशेष है कि लग्न चूँकि शरीर है अतः वह भी राहु आदि के प्रभाव में हो तो यह योग दृढ़ समझा जायेगा।

उदाहरणार्थ देखिये कुन्डली राष्ट्रपति पृष्ट सख्या ३८

यहाँ राहु द्वादशाधिपति मगल से दशम स्थान में होने के कारण मङ्गल पर अपना प्रभाव डाल-रहा है। और स्वय द्वादश स्थान में सूर्य बैठकर द्वादश स्थान को हानि पहुँचा रहा है द्वादश स्थान का स्वामी भी शनि की दृष्टि द्वारा पीड़ित है अतः कारागार का योग बना है परन्तु चूँकि गुरु द्वादश स्थान से दशम है अतः वह योग

एक अच्छे आदर्श के लिये अर्थात मातृभूमि की सेवा के लिये (गुरु चतुर्थेश भी है) हुआ।

इसी प्रकार राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की कुन्डली पृष्ठ संख्या ३० में भी द्वादश स्थान के स्वामी बुध से राहु दशम है तथा द्वादश स्थान में सूर्य है तथा द्वादश स्थानाधिपति बुध मंगल के साथ तथा शनि सूर्य से घिरा हुआ है। अतः यहाँ भी कारागार का योग बना। यहाँ भी गुरु की बुद्ध (द्वादशाधिपति) पर दृष्टि शुभ आदर्श के लिये कारागार को बतला रही है।

इसी प्रकार श्री पडित जवाहर लाल जी की कुन्डली में भी राहु का सम्पर्क द्वादश स्थान से है तथा द्वादश स्थान का स्वामी बुद्ध, मङ्गल तथा सूर्य से घिरा हुआ तथा शनि से दृष्ट है। बुध का चतुर्थ भाव में चतुर्थ भावाधिपति से सम्पर्क करना बतला रहा है कि कारागार चतुर्थ भाव सम्बन्धी आदर्शों की पूर्ति के लिये, मातृ भूमि की सेवा के लिये, था।

इसी प्रकार सरदार पटेल की कुन्डली को देखिये यहाँ भी राहु
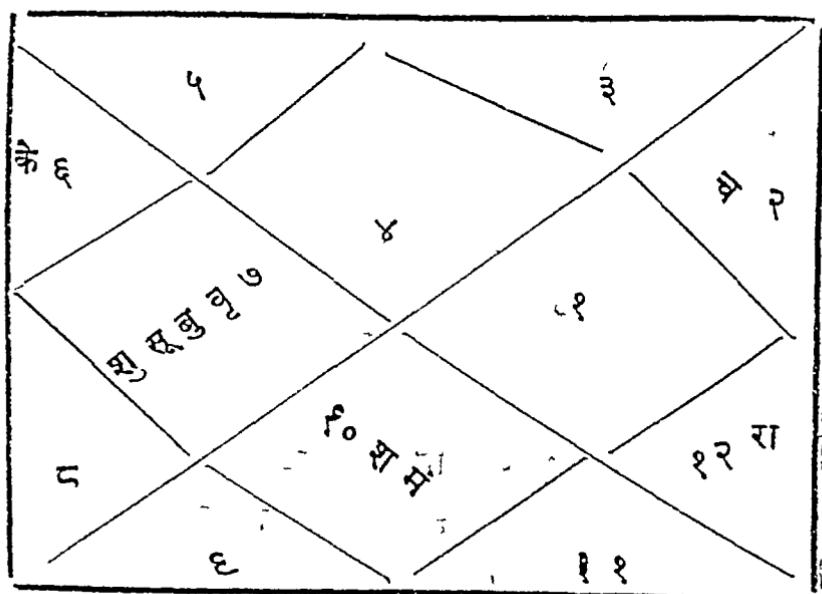
द्वादश स्थान से दशम होने के कारण द्वादश स्थान पर अपना प्रभाव डाल रहा है। द्वादश स्थान का स्वामी बुध नीच सूर्य से युक्त तथा प्रबल शनि से दृष्ट है। अत यहाँ भी कारागार का योग सिद्ध हुआ। यहाँ भी द्वादशाधिपति चतुर्थ भाव में चतुर्थाधिपति से युक्त मातृ भूमि की सेवा के लिये कारागार वास को दर्शा रहा है।

श्री लोकमान्य तिलक महोदय की कुन्डली में भी राहु द्वादश स्थान से दशम है। द्वादश स्थान तथा उसका स्वामी शनि से पीड़ित है। अतः कारागार का योग सिद्ध है।

इसी प्रकार वीर सावरकर की कुन्डली मे भी द्वादश
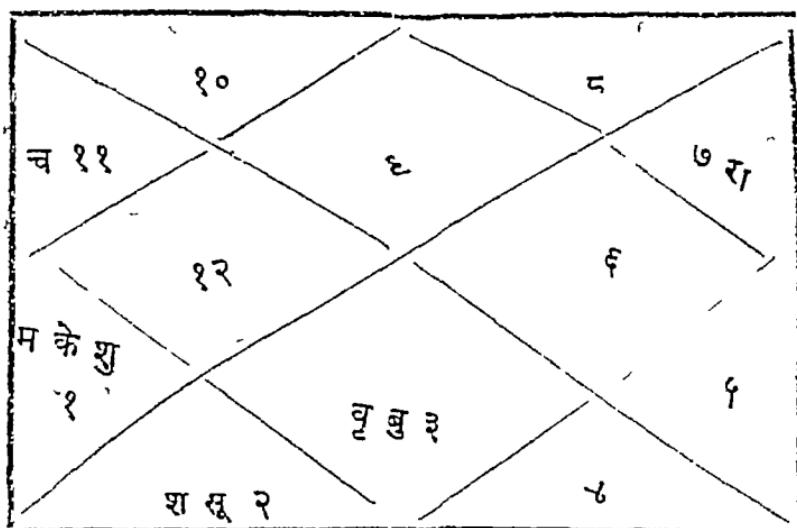
स्थान के स्वामी मगल पर राहु की दृष्टि है, द्वादश स्थान पर मगल शनि तथा सूर्य की दृष्टि है अतः कारागार का योग सिद्ध है।

अपस्मार योगमाह ।

ग्रहेष्वगुरवे चन्द्राय त्रासकृत्
ग्रहेषु चन्द्रो हि तु वेदना च चेतना ॥
चन्द्रस्तु तुर्यपरित्रिभावगो यदा
राहो प्रभावेऽपस्मार करो हि सः ॥७८॥

ग्रहों में राहु ही एक ऐसा ग्रह है जिससे चन्द्र को बहुत भय की प्राप्ति होती है बल्कि राहु का नाम ही चन्द्रविमर्दन है और उधर चन्द्र मनुष्य की वेदना तथा चेतना शक्ति (Emotion & Conciousness) का प्रतिनिधि है। अब यदि चन्द्र चतुर्थेश होकर त्रिक भाव में, अर्थात् छटे, आठवे अथवा बारहवे स्थान मे स्थित हो और उस पर दृष्टि योग इत्यादि द्वारा राहु का प्रभाव हो (शुभ प्रभाव न हों) तो वेदना तथा चेतना शक्ति को त्रास मिलने के कारण अपस्मार (मिरगी) रोग की उत्पति होती है। चन्द्र जब चतुर्थेश होगा तो वेदनात्मक मन (emotional mind) का और भी अधिक प्रतिनिधित्व करेगा। इस प्रकार इस रोग का निश्चित होना सिद्ध हो जावेगा।

इस विषय का उदाहरण निम्नलिखित कुण्डली में देखिये।
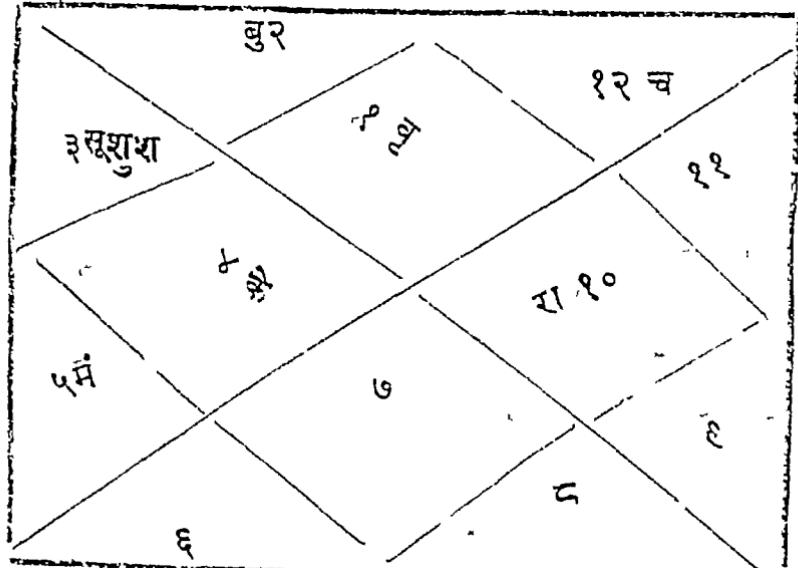
यहाँ चतुर्थ स्थान शनि मङ्गल से तथा चतुर्थ स्थानाधिपति भी शनि मङ्गल से पीड़ित हैं परन्तु विशेष कारण यह दृष्टिया नहीं बल्कि राहु, केतु का भय उत्पन्न करने वाला प्रभाव (चतुर्थ भाव पर) है तथा वुही भय उत्पन्न करने वाला प्रभाव (जो राहु की राशि के स्वामी शनि की दृष्टि द्वारा) चन्द्र पर पड़ रहा है। चन्द्र भी यहाँ मन का पूर्ण प्रतिनिधि है क्योंकि वह चतुर्थेश भी है तथा मन का कारक भी। अतः राहु का प्रभाव व्यापक है।

शासन प्राप्ति योग।

उक्तं सुष्टु वेरण तत्र मुनिना सर्वार्थचिन्तामणौ
शासन प्राप्ति विवेचना तु कुर्यान्नेत्रादि यस्तुसुधी ॥
सूर्यो दशम विलग्न दशम दशमादेतोऽपि सर्वे हितो
उपयुक्ता खलु यत्र कुत्र चिन्ता कार्या चैवं विधा ॥७६॥

"सर्वार्थ चिन्ता मणि" नामक ग्रन्थ के रचयिता मुनिश्रेष्ट ने ठीक ही कहा है कि 'शासन प्राप्ति" (acquisition of ruling and executive powers) का विवेचन बुद्धिमान मनुष्य को द्वितीय भाव से भी करना चाहिये। इस सम्बन्ध में विचार हमको सूर्य, दशम स्थान, दशम स्थानाधिपति, सप्तम स्थान (यह भाव, "भावात् भावम्" के सिद्धान्तानुसार दशम से दशम होने के कारण दशमभाव की भाँति ही फल देने वाला होता है) द्वितीय भाव तथा इसका स्वामी, इन सब से करना चाहिये। यदि यह सब बलवान हों तो मनुष्य को अवश्य ही शासन की (जैसे न्यायाधीश पद, सरकार का बड़ा कर्मचारी होना, मन्त्री पद) प्राप्ति होती है।

इस सम्बन्ध में उदाहरणार्थ राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद की कुण्डली देखिये।
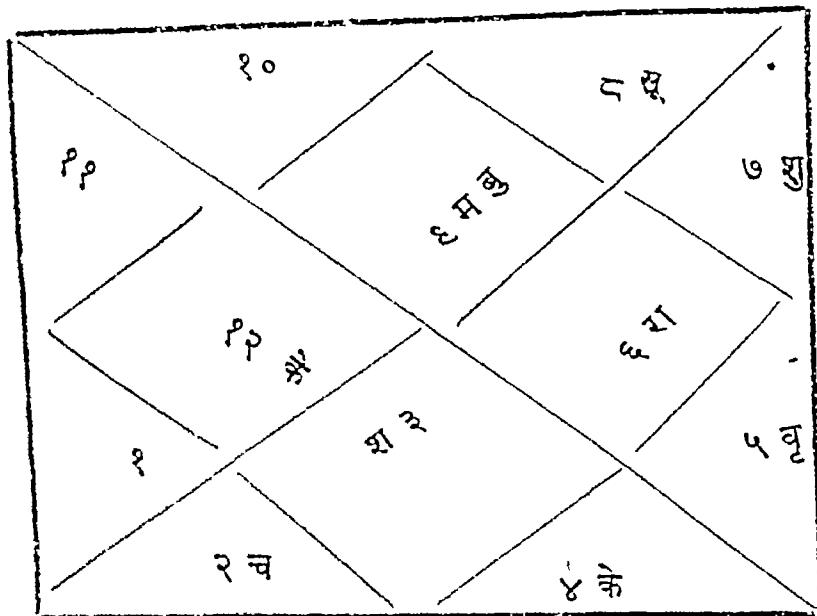
लग्न पर चार ग्रहों का प्रभाव है, गुरु की वहाँ पर दृष्टि है लग्न बली हुआ। द्वितीय भावाधिपति शनि सप्तम केन्द्र में, जहाँ उसे दिक् बल की प्राप्ति होती है मित्र राशि में स्थित है तथा दशमाधिपति एव दशम से दशमाधिपति बुध द्वारा दृष्ट है। दशमाधिपति बुध केन्द्र में दिक् बल को प्राप्त कर बली है।

सूर्य यद्यपि द्वादश भाव में है परन्तु न केवल शुभ मध्यत्व को प्राप्त कर चुका है बल्कि शुक्र से द्वितीय और गुरु से केन्द्र में है। अतः कष्ट पूर्वक राज्य दे सकता है।

इसी प्रकार देखिये कुण्डली कलनल नासिर प्रधान मिश्र देश।
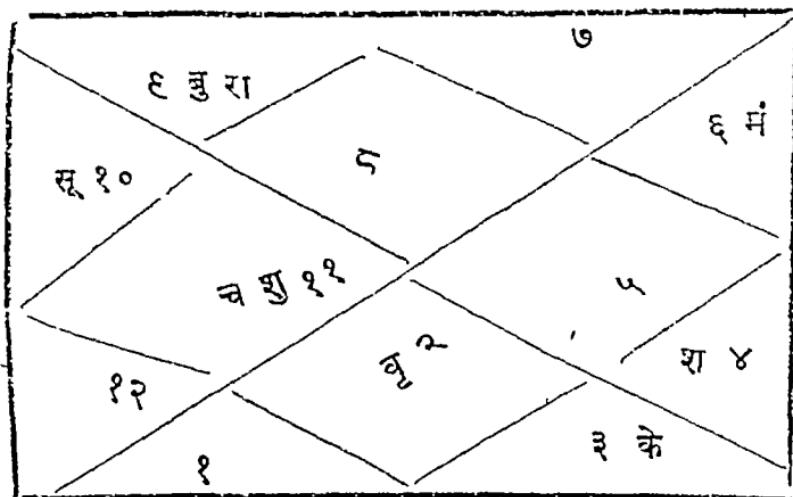
द्वितीय स्थानाधिपति गुरु केन्द्र में चन्द्र शुक्र से केन्द्रित बलवान है। उस पर किसी पाप ग्रह की दृष्टि भी नहीं। लग्नाधिपति मङ्गल एकादश (near zenith) स्थान में गुरु दृष्ट है शनि की दृष्टि यद्यपि उस पर है परन्तु शनि स्वय सूर्य द्वारा दृष्ट होने के कारण मङ्गल को विशेष हानि नहीं पहुँचा सकता, सूर्य स्वय राज्यस्थान (दशम) का स्वामी है तथा तृतीय स्थान में स्थित है जहाँ पापी ग्रहों को बल मिलता है। यद्यपि वहाँ शत्रु राशि में है तथा शत्रु से दृष्ट भी है परन्तु भाव का बल राशि की अपेक्षा अधिक होता है। पुनः शनि एक अङ्क है और बल देने वाले अङ्क सख्या में अधिक हैं। पुनः सूर्य शुभ मध्यत्व में है और गुरु से दृष्ट है अतः पर्याप्त बली है।

सप्तमाधिपति शुक्र चतुर्थ स्थान मे है जहाँ इसको विशेष बल मिलता है। मित्र राशि मे भी है, गुरु से केन्द्रित भी है, इतना 'बल प्राप्त' करने के कारण क्षीण चन्द्र का सान्निध्य शुक्र के लिये विशेष हानि कर नहीं। यहाँ विशेष बात एक और भी है कि जहाँ मङ्गल अपनी एक राशि (मेष) को देख रहा है वहा स्वय तथा उसकी दूसरी राशि (वृश्चिक) गुरु से दृष्ट है अतः लग्न तथा लग्नाधिपति विशेष बली हैं। अस्तु शासन प्राप्ति का हेतु लग्न द्वितीय, सूर्य आदि सभी का वलवान होना है।"

विपरीत राज योगमाह।

खेटो योऽपितु दुष्टभावयुक्तो शत्रुस्थितो वार्कयुक
नीचोवापि च पाप खेट युक्तो दृष्टोऽथवा जन्मनि ॥
पार्श्वौ यस्य च पाप खेट युक्तौ दृष्टावथवा तद्विधौ
तद्भावंहि विनाशमेति शीघ्रं यस्यास्ति स नायकः ॥८०॥
किन्त्वत्रापि विचारणीयमेतद्विद्वद्वरैरस्तियत्
खेटो दुष्ट गृहाधिपत्य प्राप्तो नष्टश्चैवं विधो
विपरीताख्य हि राज्ययोग प्रबलं निस्संशयंयच्छति

मौलिक नियम यह है कि जब कोई भी ग्रह नेष्ट भाव (छटे, आठवे, बारहवे) में हो, शत्रु राशि में हो, सूर्य के साथ अस्त हो, नीच राशि मे हो, पाप ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो, अथवा पापग्रहों के मध्य में हो, अथवा उस पर पार्श्वगामिनी पाप दृष्टि हो (देखो श्लोक सख्या २२) तो उस भाव की अवश्य हानि होती है जिसका कि वह ग्रह स्वामी है। वह ग्रह यदि शुभ भाव का स्वामी हुआ तो मनुष्य को उस भाव सम्बन्धी बातों की हानि अवश्य होगी। परन्तु जब वह ग्रह नेष्ट भावों का स्वामी हो और

उपरोक्त प्रकार से निर्बल हो तो उस भाव सम्बन्धी अभाव तथा विघ्नों तथा दरिद्रता आदि का नाश करता हुआ उलटा "विपरीत राज्ययोग" नाम के प्रबल धनदायक हितकारी योग को निस्सदेह उत्पन्न करने वाला होता है। तात्पर्य यह है कि ऐसी स्थिति में अशुभ भाव की अशुभता का सर्वथा नाश हो जाता है जिसका परिणाम अति शुभ निकलता है।

जैसे अष्ट भाव दारिद्रय स्थान है यदि इस भाव का स्वामी दुष्ट स्थान (छटे अथवा बारहवें) में पाप युक्त पाप दृष्ट हो तथा अतीव निर्बल हो तो इसका अर्थ होगा उस मनुष्य की दरिद्रता का सर्वथा नाश। या दूसरे शब्दों में विपुल धन की प्राप्ति।

उदाहरणार्थ देखिये निम्नलिखित कुण्डली जो एक करोड़पति स्त्री की है। यहाँ तृतीय (अनिष्ट) स्थान का स्वामी अष्टम में है।
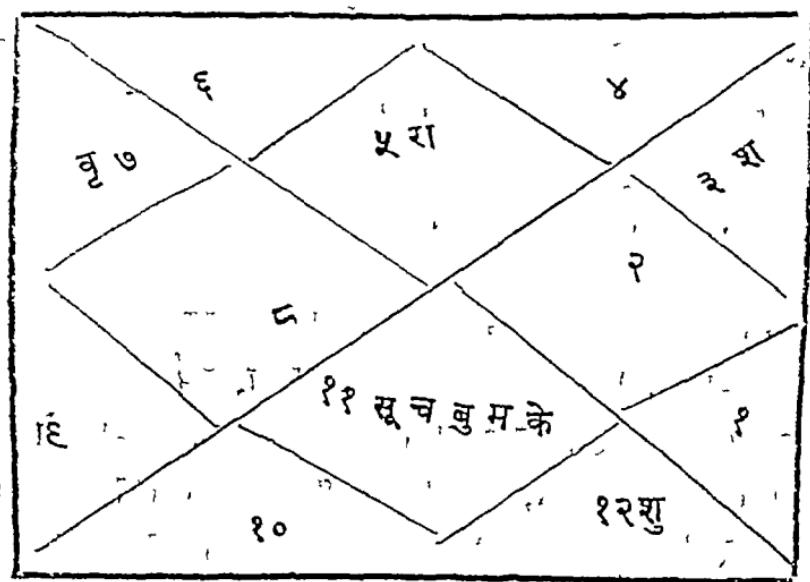
और अष्टम (त्रिक) भाव का स्वामी तृतीय में है। द्वादश (नेष्ट) स्थान का स्वामी मङ्गल केतु के साथ तथा सूर्य द्वारा ग्रस्त है। अतः

तृतीय, अष्टं द्वादश भावों के स्वामियों के अशुभ भावों में निर्बल होने के कारण दरिद्रता का नाश कर महान् धन सुख की प्राप्ति का योग बना।

दम्पतयो दीर्घ रोगमाह।

कन्या लग्ने तु जातस्य सप्तमस्थो यदा शनि
शष्ट स्थाने भवेज्जीवो भार्या च दीर्घ रोगिणी ॥८१॥

कन्या लग्न में जन्म हो, सप्तम स्थान में शनि हो और छटे में गुरु तो उस पुरुष की भार्या दीर्घ रोग से पीड़ित होगी। अथवा स्त्री की कुण्डली मे यह योग हो तो उसका पति दीर्घ रोग से पीड़ित होगा।

अत्रकारणमाह।

शनिस्तु नैसर्गिक रोगकारकः
पुनस्तु स्वयमेव स रोगनायकः
तथा च मदपो व्ययरोगमागतः
स्वास्थ्यं कुतोऽत्रतु जीवनभागिनः ॥८२॥

शनि नैसर्गिक रोग कारक ग्रह माना गया है। वुही शनि षष्टाधिपति होने से रोग का विशेष देने वाला हुआ। स्पष्ट है कि उसका योग, सप्तम भाव को अर्थात पति अथवा पत्नी को रोगी करेगा। विशेषतया जब कि सप्तमाधिपति अपने स्थान (सप्तम) से द्वादश तथा लग्न से छटे (रोग) स्थान में बैठा हो।

अहिंसात्मक वृत्तियोगमाह ।

भौमः सर्वैहि शास्त्रेषु क्रूर हिंसात्मकः स्मृतः
षष्टं च क्रूरता स्थानं षष्टात्षष्ट च यत् ।।
तस्माद् मिथुन जाताना मानवानां तुसर्वदा
भौमः क्रूरतमो ज्ञेयो हिंसा वृतिश्चदायकः ।।८३।।

सब ज्योतिष शास्त्र के पडित इस बात पर सहमत हैं कि मंगल स्वभाव से ही हिंसात्मक वृति वाला है। इसी प्रकार यह भी सबको विदित है कि षष्ट स्थान से क्रूरता का विचार किया जाता है। एकादश स्थान से भी क्रूरता का बिचार होता है क्योंकि एकादश स्थान छटे से छटा (भावात् भावम्) है। इस प्रकार जिन मनुष्यों का जन्म मिथुन लग्न में हो उनके लिये बड़ी सभावना रहती है कि वे क्रूरता वृति के वशीभूत हो जावे। स्पष्ट कि ऐसी स्थिति में मङ्गल स्वय, छटे तथा एकादशा दोनों क्रूरता स्थानों का स्वामी होगा।

सा वृतिः प्रबला ज्ञेया यदि भौमो लग्नमाश्रितः
कारणमत्र तुविज्ञेयं लग्ने तुर्ये च सप्तमे ।।
यस्माद्भौमो मनो भावंचतुर्थाच्चतुर्थ मेव च
निज प्रभावाद्दिशति क्रूरतां मनसि भृशम् ।।८४।।

वह हिंसात्मक वृति और भी प्रबल हो जाती है जब कि ऐसा मङ्गल लग्न में स्थित हो (देखिये पिछला श्लोक) कारण यह है कि ऐसी स्थिति में मङ्गल की क्रूरता का प्रभाव लग्न तथा चतुर्थ भाव

बल्कि चतुर्थ से भी चतुर्थ, सब मानसिक भावों, पर पड़ता है जिससे मन में प्रबल हिंसा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

पुनस्तु सावृत्युत्कृष्टतमा हि मन्यते
चन्द्रो यदि स्थितस्तत्र चतुर्थ भावे ॥८५॥
मातुश्च भावाधिपश्च तथाहि मदपः
भौमेन दृष्टः खल्विति क्रूर वृत्तम् ॥८६॥

और इस पर भी उन्हीं मिथुन लग्न वालों को जिनके मङ्गल लग्न में स्थित है यदि चन्द्र चतुर्थ स्थान में सप्तमाधिपति से युक्त हो तो क्या कहना। वह हिंसात्मक वृति उग्रतम रूप धारण कर सकती है अर्थात् मनुष्य प्राणघातक (murderer) तक बन जाता है। कारण स्पष्ट है कि मङ्गल का प्रभाव और भी व्यापक माना जावेगा जबकि उसकी हिंसात्मक वृति को मन रूप चन्द्रमा तथा सप्तमाधिपति (चतुर्थ से चतुर्थ के स्वामी जो चतुर्थ की भाँति मन ही है) ने भी ग्रहण कर लिया हो।

इस सम्बन्ध मे महात्मा गान्धी के घातक गोड़से की कुन्डली देखिये।
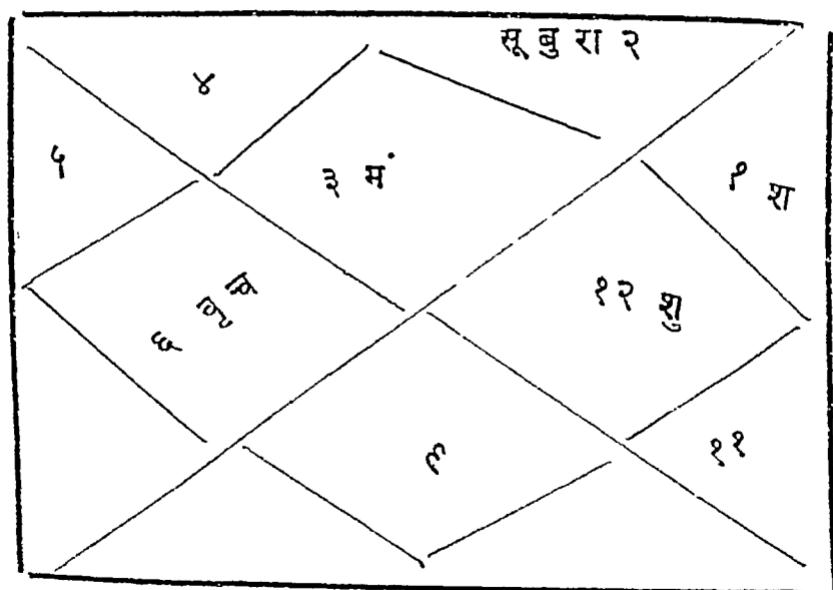
इसी प्रकरण में देखिये कुण्डली डाकू मानसिंह।
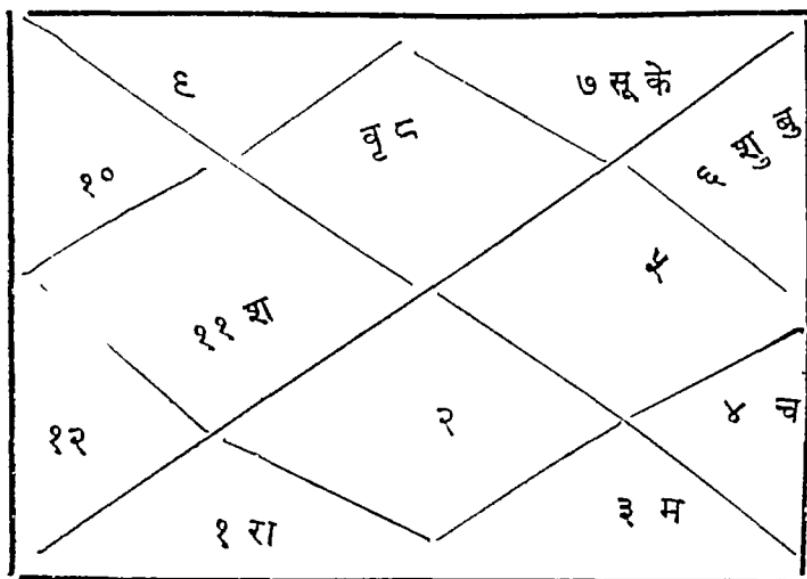
यहाँ राहु षष्ट स्थान में है तः षष्टधिपति मंगल अपने अतिरिक्त राहु का फल भी करेगा। मङ्गल जो स्वाभाविक रूप से हिंसात्मक ग्रह है स्वयं ऐसे छटे घर। स्वामी है तथा नेष्ट स्थान (अष्टम) में बैठा है अतः लग्न को अर्थात् व्यक्ति को हसात्मक वृत्ति वाला बना रहा है। फिर मङ्गल की दृष्टि स्वक्षेत्रीय बुद्ध पर जो एकादश स्थान में है पड़ रही है। अतः बुद्ध मङ्गल के हाथों विशेष कष्ट उठा रहा है। बुद्ध चतुर्थ भाव से अष्टम भाव का स्वामी है। चतुर्थ भाव जनता का भाव है। अत एकादश भाव जनता की आयु का भाव हुआ अतः स्वक्षेत्रीय बुध का हिंसात्मक मङ्गल द्वारा दृष्ट होना बतला रहा है कि जनता की आयु को मानसिंह द्वारा हानि प्राप्त हो तथा उसके हाथों कई जानों का नाश हो।

भोग वृतिमाह ।

वृषभ लग्ने तु जातस्य भौमो वाणगतो यदा
भोगात्मिकां वृतिं दिशति कारणमत्र हि कथ्यते । ८७॥

वृषभ लग्न में जन्म हो और मङ्गल पंचम भाव में स्थित हो तो मनुष्य की वृति "भोगात्मक" होती है । इसमें कारण यह है ।

अत्रकारणमाह

द्वादशं भोग स्थानं हि—
मदनश्च तथैव च ।
पञ्चमं तु क्रीड़ा स्थानं
अतो लोलो भोगात्मकृत् ।।८८॥

द्वादश भाव, जैसा कि हम बता चुके हैं, भोग का स्थान माना है । सप्तम स्थान मदन अथवा भोग का जैसा कि इसका नाम बता ही रहा है । पञ्चम भाव क्रीड़ा प्रेम (games of pleasure & lady love) का स्थान है । यही कारण है कि मगल द्वादश तथा सप्तम स्थानों का स्वामी होता हुआ प्रेम के स्थान में जब पड़ता है तो भोग प्रेम-इत्यादि की वासना को चमकाता है ।

दशाफल अध्याय ।

द्वादश स्थित शुक्रस्य भुक्तिफलमाह

दशाधिनाथो शुभदो यदि स्यात्
शुक्राद्द्वितीयेऽपिच संस्थितोहि ।
शुक्रस्य भुक्ति विदधाति योगं
प्रकर्षतो नैवात्र विचारणीयम् ॥८९॥

यदि विंशोत्तरी महादशा किसी शुभ ग्रह की हो अर्थात् किसी ऐसे ग्रह की हो जो शुभ भावों का स्वामी इत्यादि हो और बली हो तथा जन्म कुण्डली में उस महा दशा वाले ग्रह से शुक्र द्वादश भाव में स्थित हो और शुक्र की भुक्ति अथवा अन्तर्दशा (subperiod) चल रही हो तो उस भुक्ति मे महा दशा ग्रह सम्बन्धी शुभ बातों की प्राप्ति प्रकर्ष से अर्थात् बहुत मात्रा में तथा सुख पूर्वक होती है ।

बुधादि ग्रहाणां क्रिया समय माह ।

सोमात्मजो भौम भृगुश्च सोमो
देवेन्द्रपूज्यार्क तथा च मन्दः ।
क्रमेण कालस्य दिशन्ति मात्रां
सौम्यस्तु स्वल्पो मन्दस्तु दीर्घः ॥९०॥

बुद्ध मगल शुक्र चन्द्र गुरु सूर्य तथा शनि यह ग्रह उत्तरोत्तर

काल की मात्रा को दर्शाते है। अर्थात् बुध बहुत थोड़े समय का तथा शनि सब से अधिक समय का प्रतीक है।

बुधादि ग्रहाणां वर्षसंख्या माह।

उपरोक्त समय की मात्रा को और भी स्पष्ट करते हैं।

रसचन्द्रं नागचन्द्रं च
शून्यनेत्रं दिनेत्रकम्।
वेदनेत्रञ्च षट नेत्रं
नागनेत्रं तथापि च ॥६१॥
एते हि क्रमशः प्रोक्ताः
वर्षाः सोमात्मजादिनां।
प्रयोगस्तेषांतु कर्तव्यो
विवाहादि काल निर्णये ॥६२॥

बुद्ध के १६ (सोलह), मगल के १८ (अठ रह), शुक्र के २० (बीस), चन्द्र के २२ (बाइस), गुरु के २४ (चौबीस), सूर्य के २६ (छब्बीस), तथा शनि के २८ (अठाईस) वर्ष कहे हैं। इनका प्रयोग—विवाहादि कब होगा—इन बातों के स्थूल निर्णय के लिये किया जाता है।

अस्योदाहरणम्।

धनुर्लग्ने तुजातानां विवाहो शीघ्रमेवहि।
विलम्बस्तु पाप दृग्योगाच्छुक्रे मदपे तथानगे ॥६३॥

जिन मनुष्यों का जन्म धनु लग्न में होता है उनका विवाह प्रायः शीघ्र ही हो जाता है क्योंकि उनका सप्तमाधिपति कुमार (बुध) होता है जो कि बहुधा (On an average) १६ वर्ष की आयु में

विवाह करवा देता है। परन्तु सब धनु लग्न वालों का विवाह जल्दी होता हो ऐसा अनुभव तो नही है। इसमें कारण यह है कि जब सप्तम भाव सप्तम भावाधिपति तथा सप्तम भाव कारक (पुरुषों के लिये शुक्र स्त्रियों के लिये गुरु) पर पाप ग्रहों का प्रभाव पड़ता है तो जितने अंगों (factors) पर अधिक पाप प्रभाव होगा विवाह का समय समीकृतराशि (Average) से उतना ही दूर होता चला जायेगा। यदि कोई पाप प्रभाव न हो तो विवाह अवश्य १६ वर्ष की आयु में ही होगा। और यदि ऐसे बुध पर केवल मात्र शुभ ग्रहों की दृष्टि आदि हो तो विवाह १६ वर्ष से भी पूर्व हो जावेगा। इसी प्रकार अन्य लग्नों के सप्तमेश के वर्षों का शुभाशुभ दृष्टि योगानुसार घटा-बढ़ा कर विवाह का स्थूल वर्ष निकालना चाहिए।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली लीजिये।
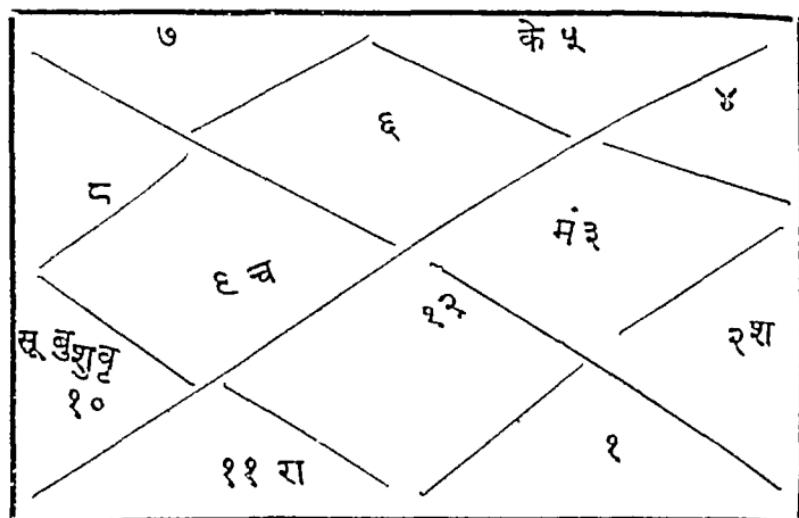
यहाँ "विवाह" का वर्ष निकालना है। सप्तम भाव तथा सप्तम भाव के स्वामी का विचार कीजिये।

पहले सप्तम भाव के स्वामी को लीजिये। वह गुरु है जो यदि सम अवस्था का अर्थात् न बली न निर्बल हो तो २४ वर्ष की अवस्था

में विवाह करवा देता है। यह पञ्चम भाव मे होने के कारण बली है परन्तु नीच राशि के कारण निर्बली। परन्तु जैसा कि हम अन्यत्र लिख आए हैं राशि की अपेक्षा भाव का फल मुख्य माना जाता है अतः गुरु थोड़ा बली ही निकला। अतः २४ में से २ वर्ष की कमी करनी पड़ेगी = २२ क्योंकि बली होना विवाह के शीघ्र होने का द्योतक है। पुनः बृहस्पति पापी परन्तु निर्बल सूर्य के साथ है परन्तु बुध शुक्र शुभग्रहों के साथ भी है। अतः ४ वर्ष और शीघ्र शादी कर दीजिए। अर्थात् २२ − ४ = १८ परन्तु पापी मङ्गल की दृष्टि ४ वर्ष का विलम्ब उत्पन्न करेगी। अतः १८ + ४ = २२। सप्तम भाव पर मङ्गल का प्रभाव २ वर्ष का विलम्ब = २४। अब कारक अर्थात् शुक्र को देखिये— सूर्य के साथ होने से २ वर्ष का विलम्ब परन्तु सप्तमाधिपति एवं गुरु तथा बुध के साथ होने से ६ वर्ष की शीघ्रता २४ + २ − ६ = २० लगभग। वास्तव मे विवाह १६ वर्ष के अन्त में हुआ। साधारणतय. शुभ अथवा अशुभ योग के २ वर्ष तथा शुभ अथवा अशुभ दृष्टि के ४ वर्ष नियत किये गये हैं।

हाँ जहाँ सप्तम भाव, उसके स्वामी तथा उसके कारक पर नितान्त पाप प्रभाव ही हो कोई शुभ प्रभाव न हो तो विवाह न होगा ऐसा समझना चाहिये।

एवं कालो विवाहस्य ज्ञायते सप्तम भावतः
तद्भावपतिना चैव तत्कारक वशादपि ॥६४॥

इस प्रकार सप्तम भाव उसके स्वामी तथा उसके कारक द्वार विवाह का समय जाना जाता है।

तत्र विंशोत्तरी योज्यं सूक्ष्म काल निर्णये
गोचरं च तथा योज्यमेवं कालस्य निर्णयः।

यत्र उपरोक्त विधि से विवाह आदि के स्थूल काल का निर्णय हो जावे तो "विशोत्तरी" दशा तथा "गोचर" द्वारा विवाह के सूक्ष्म काल का निर्णय करना चाहिये ।

बुधादि वशाद्भाग्योदय कालमाह ।
द्वितीय भवधर्म पतीशु यश्च
ग्रहश्चाशुभ फलदायको भवेत् ।
तेनैव निश्चय भाग्योदयस्य
कालस्य कार्यो दृग्योगमीद्दय ॥६५॥

द्वितीय एकादश तथा नवम स्थानों के स्वामियों में से जो ग्रह श्लोक सख्या ६२ के अनुसार शीघ्र से शीघ्र फल देने वाला हो उसी ग्रह की वर्ष सख्या को आधार मान कर तथा उस ग्रह पर शुभ अथवा अशुभ ग्रहों के दृष्टि योग इत्यादि का विचार करके भाग्योदय काल की वर्ष सख्या का भी निर्णय करना चाहिये । शुभ ग्रहों के प्रभाव मे वर्ष । य. को कम करो तथा अशुभ ग्रहों के प्रभाव से इस सख्या को बढावो ।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली पर विचार कीजिये ।
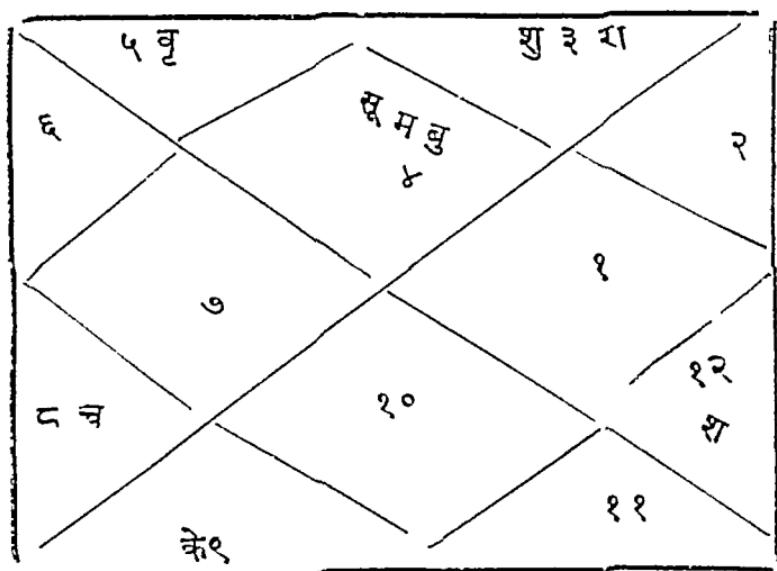
यहाँ द्वितीयाधिपति सूर्य है, नवमाधिपति गुरु तथा लाभाधिपति, शुक्र। सूर्य गुरु तथा शुक्र में से शुक्र सब से शीघ्र फल देने वाला है। अतः एकादश भाव जिसका कि शुक्र स्वामी है तथा शुक्र दोनों का विचार करना चाहिये। एकादश भाव पर जहां शनि की दृष्टि द्वारा भाग्योदय मे विलम्ब होता है वहाँ चन्द्र की दृष्टि द्वारा उसमे शीघ्रता आती है अतः शुक्र के समाकृत (average) वर्षों अर्थात् २० मे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उधर शुक्र द्वादश स्थान में बली होने के कारण जितना भाग्योदय को शीघ्र करना चाहता है सूर्य तथा शनि के पाप मध्यत्व के कारण वह भाग्योदय उतना विलम्ब भी चाहता है। अतः राहु के योग का विलम्ब ही कार्य कर रहा है २०+२=२२। व्यक्ति का भाग्योदय २१ वर्ष की आयु में हुआ। शुभ ग्रहों के प्रभाव से वर्ष संख्या को कम करो तथा अशुभ ग्रहों के प्रभाव से बढ़ाओ।

नैसर्गिक पाप ग्रहदशायां तस्यैव भुक्ति फल माह

विंशोत्तरी दशायां तु यगवद्वायश्च भुक्तिच
नैसर्गिक पाप खेटस्य यदायातिहि जीवने॥
तत्र काले भवेच्चिन्ता रोगोऽथवा धन नाशनम्
स्वरूपं तत्र दुखस्य वाच्यं दृष्ट ग्रहादिभि॥६६॥

विंशोत्तरी दशा पद्धति अनुसार जब एक ही किसी पाप ग्रह की महा दशा हो और उसी पाप ग्रह की भुक्ति हो तो उस भुक्ति समय में मानसिक व्यथा, रोग, अथवा धन का नाश इत्यादि होते हैं। किस प्रकार का कष्ट मनुष्य पर उस समय होता है इस बात का निर्णय उस भाव सम्बन्धी बातों पर विचार द्वारा निश्चित किया जावेगा कि जिस भाव का स्वामी ग्रह उस भुक्ति में चलने वाले ग्रह द्वारा दृष्ट है।

प्रपं युक्त बुधस्य दशायां तस्यैव भुक्ति फल माह ।

बुधोहि लग्ने च यमार्क युक्तो
दाये स्वकीये निजैव भुक्तौ ।
दत्वा फलमत्र यमार्कजं हि
स्त्री पत्तनो नरवरं पृथकं करोति ।।६७।।

जब बुध लग्न में शनि तथा सूर्य से युक्त होकर स्थित हो और जीवन में उसी बुध की महा दशा हो तथा (विशोंत्तरी अनुसार) उसी ही ग्रह की अन्तर्दशा भी हो तो ऐसी भुक्ति में बुध अपना फल न देकर सूर्य तथा शनि का फल देगा क्योंकि सूर्य तथा शनि दोनों ही पृथकता लाने वाले ग्रह है अतः एक फल यह होगा कि सूर्य तथा शनि की दृष्टि के कारण स्त्री पक्ष से जिस पृथकता का बोध हो रहा था (देखिये श्लोक संख्या ३) उसके फल का समय समझा जावेगा और मनुष्य अपनी स्त्री से (यदि कुण्डली स्त्री की हो तो स्त्री अपने पति से) पृथक हो जावेगा ।

शुभाशुभ युति फलमाह ।

नैसर्गतः पापी यदा हि जन्मनि
युक्तश्चद्वाभ्या शुभखेचराभ्या ।
शुभौ च नैसर्गिक शोभनौ यदा
दशाविचारस्त्वयमत्र कार्य ।।६८।।

जब कोई एक नैसर्गिक पाप ग्रह दो नैसर्गिक शुभ ग्रहों से युक्त हो तो दशा का विचार इस रीति अनुसार करना चाहिये :—

कस्याप्येकस्य शुभस्य दाये
तस्यैवभुक्तिरपि शुभान्य भुक्ति ॥
पाप ग्रहाय शुभतां सम्यक् चदत्वा
नूनं च खेटं सवलं करोति ॥६६॥

उन दो नैसर्गिक शुभ ग्रहों में से किसी एक की तो महा दशा हो और अन्तर्दशा उनमे से किसी शुभ ग्रह ही की हो तो दो शुभ दशाओं की दशा भुक्ति के कारण शुभता का फल पापी ग्रह को मिलता है जिससे वह पापी ग्रह बलवान हो जाता है। पुन॰

एवं प्राप्य वलं स पाप खेचरो
दुःस्थानं प्राप्तोऽपि वा ।
शत्रु स्थान गतोऽपि तत्र कथितः
शुभदो यद्यस्ति शुभ नायकः ॥१००॥

इस प्रकार जब वह नैसर्गिक पापी ग्रह शुभता द्वारा बलप्राप्ति कर लेती है तो फिर वह ग्रह चाहे ६, ८, १२ आदि अशुभ भावों में ही क्यों न स्थित हो और चाहे वहाँ शत्रु राशि का भी क्यों न हो, शुभ ही फल देने वाला होगा। परन्तु इतना अवश्य है कि वह पापी ग्रह शुभ भावो का स्वामी होना चाहिये।

उदाहरणार्थ देखिये निम्नलिखित कुण्डली के ग्रह।
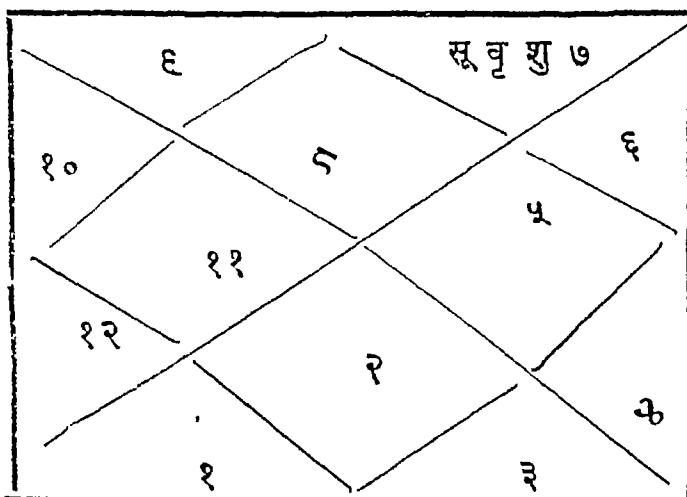
मान लीजिये महा दशा गुरु की है और अन्तर्दशा शुक्र की परिणाम यह निकलेगा कि गुरु तथा शुक्र दोनों अपनी शुभता सञ्चार सूर्य में करेंगे । तथा फलस्वरूप सूर्य सम्बन्धी शुभ घटेंगी । अर्थात् दशम् भाव सम्बन्धी बातें जैसे राज्य की ओर मान, महान् अधिकारियों की ओर से कृपा शुभ धर्म कार्यों में प्रवृत्ति इत्यादि जीवन में घटित होगी ।

॥ इति ॥

प्रकाशक—दीवान सुरेन्द्र नाथ कश्यप, अलोपी बाग, इलाहाबाद
मुद्रक--श्री आई० बी० सक्सेना, माधो प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद—